

Here everything is
awakened and rous
the first lines abo
philosopher Rabind
ring his visit to the
1930.

India's great wr
was making its first
workers and peasan
become the rightful
wealth – its land, w
ses and banks – wa
first time 126 natio
Russia acquired fre
given equal opportu
dy. The people's go
to children's welfare

Rabindranath Ta
was rising from the
socialist industrializa
and cultural revolutio
Soviet science.

He wrote with e
concern and effort th
no one should feel w

How perspicacio
philosopher. For all
vernment's chief co
being, the working p
followed the Octobe
sed a centuries-lon
peoples of our great
road of independent

Each Union Rep
Soviet Socialist Rep
government and Aca
result of the Great
inspired and organi
great leader of the pr

As stated in the A
Soviet people on the
sary of the Great Octo
Revolution is the mos
century. It heralded t
people's lives. Time

गद्य-पद्य-संग्रह

(क शिक्षा बोर्ड, राजस्थान की कक्षा 12 की अनिवार्य हिन्दी
के लिए स्वीकृत पाठ्य पुस्तक)

सम्पादक

डा. नेमनारायण जोशी

पुरुषोत्तम लाल तिवारी

राधामोहन पुरोहित

1991

प्रकाशक

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर

,00,000

मूल्य : रु. 3-90 पै

लेवी : 0-15 पै

मुद्रक : चावला प्रिन्टर्स, अजमेर

अनुक्रम

यह पुस्तक हिन्दुस्तान पेपर कॉर्पोरेशन लि. के 60 जी. एस. एम. क्रीमवोव 22 × 36/15.3 के. जी. वजन के कागज पर मुद्रित की गई।

शिक्षक बन्धुओं से

भाषा—शिक्षण के प्रयोजन को ज्ञान, अर्थग्रहण, अभिव्यक्ति, अभिवृत्ति और अभिरुचि नामक उद्देश्यों में निर्धारित किया गया है। प्राथमिक स्तर से ले कर उच्चतर माध्यमिक स्तर तक इनकी गहनता का विकास अभीष्ट होता है।

ज्ञान के उद्देश्य को भाषा-तत्व, विषय-वस्तु और रचना-रूपों के क्षेत्रों में बांटा जाता है। भाषा तत्वों का ज्ञान सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके अन्तर्गत उच्चारण, वर्तनी, शब्द-रचना, शब्द की रूप-रचना और नये संदर्भों में नये प्रयोग सीखने-सिखाने के प्रसंग होते हैं। उच्चारण और वर्तनी यद्यपि निचले स्तर पर अधिक महत्व रखते हैं, किन्तु उच्च स्तर पर भी इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। शब्द-जगत तो सदा ही शिक्षण-योग्य होता है। वाक्य-रचना और वाक्य का ध्वन्यर्थ भी इस स्तर पर विशेष महत्व रखता है।

विषय-वस्तु अधिकतर सूचनात्मक होती है। परीक्षा में वह उत्तीर्णता का आधार भी बनती है। अतः उसका गहन विश्लेषण और आत्मीकरण शिक्षण में आवश्यक हो जाता है।

रचना के विविध रूपों के बारे में छात्रों की जानकारी बढ़ाने का प्रयास भी होते रहना चाहिए ताकि वे साहित्य की विविध विधाओं के स्वरूप और उनके नयेपन से परिचित रहें।

ज्ञान से उच्चतर उद्देश्य अर्थ-ग्रहण का माना जाता है। इसका साधारण आशय है—समझना। किन्तु तकनीकी दृष्टि से इसका आशय है ऐसी चिन्तनात्मक योग्यताओं के विकास का अवसर देना जिनमें विषय-वस्तु या भाषा से सम्बन्धित बातों का सम्बन्ध खोजना, कारण खोजना, उनका विश्लेषण करना, संश्लेषण करना, अनुमान करना, विवरण देना, सारांश करना, शीर्षक बनाना जैसी कोशिश हो। ऐसी योग्यताएं भावी जीवन के लिए और स्वायत्त पठन के लिए आवश्यक होती हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षक को प्रयत्नशील रहना चाहिए और उपरोक्त योग्यताओं के विकास के लिए प्रश्नों, समस्याओं आदि की रचना करते रहना चाहिए।

अभिव्यक्ति अपनी बात को सारगर्भित तरीके से कहने का नाम है। उसमें शुद्धता, संक्षिप्तता और अभीष्टता आए इसके लिए छात्रों को पाठ-सामग्री पर चर्चा करने, अपने विचार व्यक्त करने, वाद-विवाद करने आदि के अवसर दिए जा सकने चाहिए। उसी प्रकार लिखित रूप में भी समीक्षा करने, सारांश करने, विधागत रूपान्तर करने, अनुवाद करने आदि के आयोजन किए जा सकने चाहिए। अभिव्यक्ति का अभ्यास होने पर छात्रों में आत्म विश्वास बढ़ता है जो अन्य विषयों में भी सहायक होता है।

अभिवृत्ति का उद्देश्य सामाजिक, साहित्यिक और भावनात्मक रुझानों और वृत्तियों के विकास का है। साहित्य वैसे भी अनेक जीवन-मूल्यों का संदेश देता है। उन्हें उजागर करना और छात्रों को उन पर विचार-विमर्श करने का, अपना मत बनाने का अवसर देना इस उद्देश्य की पूर्त्ति में सहायक होता है। पाठ-सामग्री में निहित जीवन-मूल्यों का इस प्रकार से विश्लेषण या प्रस्तुतीकरण हो कि छात्र उन पर सहमति या असहमति बना सकें, उनकी अभिलाषा कर सकें या निष्ठा व्यक्त कर सकें।

अभिरुचि का उद्देश्य पठन-सामग्री के प्रति रुचि और साहित्य-जगत में प्रवेश की उद्यतता जगाने का नाम है। पुस्तकालय और वाचनालय का अधिक उपयोग करने की प्रेरणा देना, पठन-सामग्री को वृहत्तर साहित्य से जोड़ना कुछ ऐसे उपाय हैं जो छात्रों में रुचि जगा सकते हैं।

इन उद्देश्यों की चर्चा इसलिए कि ये बातें हमारे ध्यान में बनी रहें, क्योंकि अध्यापक की प्रेरणा के अभाव में कई बार छात्र वह सब कुछ नहीं कर पाते जो वे कर सकते हैं।

प्रस्तुत संकलन में गद्य और पद्य भाग इस तरह से संजोए गए हैं कि उनकी पठन-सामग्री हिन्दी साहित्य का समग्र भावेन प्रतिनिधित्व कर सके। गद्य में आचार्य शुक्ल से लेकर अधुनातन रचनाकार की रचना रखी गई है। पद्य में भक्ति, रीति और आधुनिक काल की प्रतिनिधि रचनाओं को लिया गया है। इनमें जीवन-मूल्यों और जीवनगत अनुभूतियों का प्रकाशन भी हैं।

आशा है, आपके सक्रिय सहयोग और मार्ग-दर्शन में छात्र हिन्दी-साहित्य का समग्र स्वरूप आकलित कर सकेंगे, उनकी अर्थग्रहण की क्षमता बढ़ेगी और वे अपनी बात सशक्त भाषा में व्यक्त कर सकेंगे।

हिन्दी-साहित्य का परिचय—

हिन्दी-साहित्य का इतिहास कम-से-कम भी हजार साल पुराना कहा जाता है। भाषा की दृष्टि से चाहे सौ-दो सौ वर्षों में कुछ अन्तर आ जाता है, लेकिन भाव, विचार, जीवन-मूल्य आदि की दृष्टि से हिन्दी साहित्य आज भी प्राचीन संस्कृति की थाती कहा जा सकता है। उसमें पुरानी-से-पुरानी और नई-से-नई वृत्तियों के दर्शन होते हैं।

साहित्य को मुख्यत: दो भागों में बांट कर उसका अध्ययन किया जाता है—गद्य साहित्य और पद्य साहित्य।

हिन्दी गद्य का विकास—

प्राप्त जानकारी के अनुसार हिन्दी गद्य के पहले दर्शन भक्ति काल में सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में होते हैं। उस समय साहित्य की भाषा ब्रज थी। "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" तथा "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" के उदाहरण दिए जाते हैं।

जिसे हम हिन्दी कहते हैं, वह इससे पहले "खड़ी बोली" कहलाती थी। उसमें ब्रज भाषा और दक्षिण में दक्खिनी रेख्ता की मिलीजुली भाषा होती थी। रेख्ता का नमूना आज भी हैदराबाद की शैली में देखा जा सकता है।

आधुनिक अर्थों में हिन्दी कही जाने वाली गद्य भाषा को कलकत्ता के फोर्ट विलियम कालेज की प्रेरणा से रचे गए मुंशी सदासुख लाल, इंशाअल्लाखां, लल्लूलाल और सदल मिश्र के साहित्य में प्रमाणित किया जाता है।

इसके बाद उन्नीसवीं सदी में हिन्दी का गद्य साहित्य तीव्र गति से विकसित हुआ। राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, राजा शिवप्रसाद सिंह, राजा लक्ष्मणसिंह आदि ने अपनी-अपनी शैली में हिन्दी गद्य का भंडार बढ़ाया। इसाई मिशनरियों और पाठ्य पुस्तकों के कारण भी हिन्दी गद्य त्वरित गति से बढ़ा।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी गद्य-लेखन को नई दिशा दी। उनके लेखन में भारतीय समाज की तत्कालीन अवस्था, बुराइयों से मुक्ति का आग्रह और स्वदेश प्रेम व्यक्त हुआ। इस धारा में 1850 से लेकर 1900 तक अनेक लेखक अपनी-अपनी प्रतिभा और विशेषताओं के साथ हिन्दी गद्य साहित्य का भंडार भरने को अवतरित हुए। नाटक, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य, गीतिकाव्य आदि विधाओं में सैंकड़ों रचनाएं हुईं जो अपने समय की सामाजिक अवस्था और आवश्यकता का बोध कराती हैं। बालमुकुन्द गुप्त, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी, देवकी नन्दन खत्री आदि कुछ नाम हैं जो हिन्दी लेखकों के लिए प्रेरणा के स्रोत बने।

सन् 1900 से 1930 तक का समय हिन्दी गद्य के विविधात्मक रूपा विकास और उत्थान का समय माना जाता है। इस काल के प्रमुख प्रेरक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। उन्होंने हिन्दी भाषा के परिष्कार और उसे व्याकरण सम्मत बनाने का महान कार्य किया था। इसी काल में कामता प्रसाद गुरु ने "हिन्दी व्याकरण" की रचना की थी। आज भी उसकी प्रतिष्ठा कम नहीं हुई है। इसी काल में सरदार पूर्णसिंह, और डा. रघुवीर सिंह ने भावात्मक निबन्धों की नींव डाली। बालमुकुन्द गुप्त ने चुटीले व्यंग्यों की छटा बिखेरी। जयशंकर प्रसाद इसी काल में अपने ऐतिहासिक नाटकों और भावना प्रधान कहानियों के साथ उदित हुए। साहित्य पर आलोचनात्मक लेख लिखने का काम भी इसी काल में आरम्भ हुआ।

इस काल के बाद का समय मुख्यतः शुक्ल के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसके मुख्य प्रेरक रहे हैं। उन्होंने एक ओर तो आलोचनात्मक साहित्य के लिए दिशा प्रदान की ओर दूसरी और हिन्दी साहित्य के इतिहास की शाखा का शुभारम्भ किया। बाबू गुलाबराय, बाबू श्यामसुन्दर दास, वासुदेव

शरण उपाध्याय, पदुम लाल पुन्नालाल बख्शी आदि प्रमुख साहित्यकार इसी युग की देन हैं। दूसरी ओर उपन्यास, कहानी और नाटकों के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद, मुंशी प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार, रायकृष्णदास, वियोगीहरि आदि सैकड़ों ऐसे नाम हैं जिन्होंने हिन्दी के भारती-भंडार को अनमोल रतन दे कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

1940 के बाद का समय परिनिष्ठित हिन्दी के गद्य साहित्य के अनेक मुखी विस्तार का है। गद्य की सभी विधाओं के विस्फोट और विस्तार का युग इसे कहें तो भी चलेगा। भाषा की अनेक शैलियां, विधाओं और उप-विधाओं के अनेकानेक स्वरूप, एकांकी, रेडियो रूपक, शब्द चित्र, रेखाचित्र, लघुकथाएं, ललित निबंध आदि का अनोखा विकास देखने को मिलता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राम विलास शर्मा, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन "अज्ञेय", नन्द दुलारे वाजपेयी, डा. नगेन्द्र, कन्हैया लाल मिश्र "प्रभाकर" रामवृक्ष बेनीपुरी, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा, मोहन राकेश, हरि शंकर परसाई, शिवानी, मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव, विनोद रस्तोगी, शरद जोशी, प्रभाकर माचवे, विद्या निवास मिश्र, कुबेर नाथ राय आदि सैकड़ों गद्यकार तथा हर राज्य से हिन्दी के लेखकों ने साहित्य का सृजन किया है, कर रहे हैं और हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा दिला रहे हैं।

इस समय हिन्दी का गद्य साहित्य बहुत विस्तृत और विविध रूपा दिखाई देता है। उसमें मानव जीवन के हर क्षेत्र का चित्रण और ज्ञान-विज्ञान की हर शाखा का साहित्य मौजूद है।

पद्य साहित्य

भारतीय गद्य साहित्य की तुलना में उसका पद्य साहित्य अति-प्राचीन है। वेदों की रचना भी पद्यात्मक है। हजारों वर्षों की भारतीय संस्कृति की मान्यताएं, सामाजिक रीति-नीति, विश्वास, नीति, प्रकृति के प्रति धारणा, भूमि प्रेम, कर्तव्य भावना का निरूपण, जीवन दर्शन, तत्व मीमांसा आदि पद्य साहित्य में सुरक्षित हैं।

"भाषा के रूप तो बदलते रहते हैं, किंतु साहित्य निरंतर प्रवहमान रहता है," इस तथ्य का प्रमाण भारतीय पद्य साहित्य के इतिहास से लगता है। हिन्दी के प्रसंग में पद्य साहित्य के प्रमाण अमीर खुसरो, गोरखनाथ, नामदेव, कबीर और दक्खिनी हिन्दी के रेख्ता साहित्य में मिलते हैं। किंतु आधुनिक विषयों और विचारो के साथ-खड़ी बोली का कविता साहित्य भारतेंदु के समय से आरंभ माना जाता है। उन्होंने हिन्दी कविता को तत्कालीन समाज की अवस्था और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का साधन बनाया और पुरानी पद्य की धारा को नया मोड़ दिया।

1850 से 1900 तक तो हिन्दी कविता, की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। उसके बाद पंडित श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सियाराम शरण गुप्त आदि ने द्विवेदी युग में हिन्दी कविता को राष्ट्रीय आन्दोलन और जन-जागृति का शंखनाद बना कर विकसित किया। हिन्दी भाषा की विविध शैलियों में अनेक कवियों ने राष्ट्र की समसामयिक वाणी को अभिव्यक्त किया, स्वतंत्रता का नारा बुलंद किया और सामाजिक कुरीतियों पर तीखे प्रहार किए। विविध प्रकार के छंदों और गीतों में हिन्दी कविता का नया रूप निखरा।

1920 के बाद हिन्दी कविता में प्रसाद, पंत और निराला ने नये युग का सूत्रपात किया। छायावाद या स्वच्छंदतावाद के नाम से जाने गए इस युग में कविता वैयक्तिक बनी, उसमें जिज्ञासा का भाव मुखर हुआ, प्रकृति को रहस्य रोमांस के रूप में उभारा गया, भारतीय संस्कृति के गौरव को सशक्त वाणी प्रदान की गई, नारी को सामाजिक आधार के रूप में पूजनीय बनाकर प्रस्तुत किया गया। भाषा में रहस्य और प्रतीकों का समावेश किया गया और कविता को छंदों के बन्धन से मुक्त करके निर्बन्ध बनाया गया। माखन लाल चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारीसिंह दिनकर, सुभद्राकुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी आदि ने हिन्दी कविता को एक देश व्यापी स्वर दिया और वह भारतीय राष्ट्र की अभिव्यक्ति बनी।

1930 के आसपास कविता के स्वर में नया मोड़ आया, जब कवियों का ध्यान सामाजिक शोषण, ग्रामीण जीवन की विवशता और मजदूरों की दयनीयता की ओर गया तो समाजवादी जीवन-दर्शन की प्रेरणा से, उनकी वाणी शोषण के विरुद्ध और न्याय संगत समाज की स्थापना के लिए हुंकारने लगी। इस प्रकार के स्वर वाली कविता को प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है। 1936 में तो प्रगतिवादी लेखक संघ की स्थापना भी हुई थी। इस प्रकार की कविताओं में आर्थिक और सामाजिक शोषण के विरुद्ध संगठित होने और पूंजीवादी ढाँचे को तोड़ने का विद्रोही स्वर मुखरित हुआ है, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति और उनके संगठन की शक्ति में विश्वास उभरा है, पुराने सामाजिक मूल्यों और नैतिकता के पूंजीवादी मानदण्डों का विरोध उभरा है, मौजूदा स्थिति पर व्यंग्य किए गए हैं, प्रकृति को भी दलितों के साथ रोते बताया गया है और कामना की गई है कि समाज न्याय, समानता और समता पर संगठित हो। रामधारी सिंह दिनकर, भगवती चरण वर्मा, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, निराला, परवर्तीकाल

में सुमित्रानन्दन पंत, प्रभाकर माचवे, अज्ञेय, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन आदि ऐसे कवि थे जिन्होंने कविता को सशक्त वाणी दी।

देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता के बाद बदली हुई परिस्थितियों में कविता ने फिर नई करवट ली। उसमें जो कुछ भी गुलामी के जमाने का था, भाषा में, विषय वस्तु में, विचारों में, छन्दों में, सबको त्यागने और नये धरातल पर नई शैली का प्रतिपादन करने की प्रवृत्ति उभरी। अज्ञेय के साथ नये युग का नामकरण हुआ—प्रयोगवाद। नये उपमानों की रचना हुई, नये प्रतीक बने, पुराने प्रतीकों को नये बिम्ब दिए गए ओर भाषा को बोलचाल बल्कि आंचलिकता से समन्वित किया गया। भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, शकुन्त माथुर, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती आदि अनेक कवि इस धारा में प्रयोगरत हैं।

साठोत्तर काल में हिन्दी कविता फिर एक नई दिशा में चल पड़ी। वह दिशा भीड़ में अकेलेपन के बोध की, सामाजिक संघर्ष से सिमट कर अपने भीतर उन्मुख होने की, अनिश्चय, भविष्य-बोध के अभाव और भोगे हुए यथार्थ की कसक भरी पीड़ा की दिशा है। प्रयाग नारायण त्रिपाठी, सर्वेश्वर दयाल, विजय देव नारायण साही, कीर्ति चौधरी आदि की कविताओं में प्रयोगवाद के साथ अस्तित्व वादी तत्व देखने को मिल जाते हैं। यह तथ्य यह बताता है कि हिन्दी कविता मध्यम वर्ग की चिन्ता और पीड़ा के साथ जुड़ गई है।

यह पीड़ा-बोध इतना सघन रहा है कि कविता अब अकविता की ओर मुड़ गई है। अब लम्बी कविताओं और गीतों की जगह मुक्तक और तुक्तक ले रहे हैं और देश में हजारों-हजार कवि हिन्दी कविता का कलेवर अपनी-अपनी अनुभूतियों से भर रहे हैं।

——

'मानस' की धर्म-भूमि

रामचन्द्र शुक्ल

लेखक-परिचय :

आचार्य शुक्ल आधुनिक गद्य युग के अग्रणी निबन्धकार थे। इन्होंने हिन्दी आलोचना को प्रौढ़ता प्रदान की है। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखकर शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के विकास को समझने के नवीन आयाम का सूत्रपात कि[illegible] था। इन्होंने समीक्षा के नये मापदण्ड स्थापित किए। इन्होंने शास्त्रीय, सैद्धान्ति[illegible] तथा व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। शुक्लजी ने [illegible]

तुलसी तथा जायसी के काव्य पर समीक्षा ग्रन्थ लिखे। इसके साथ ही उन्होंने उत्साह, श्रद्धा-भक्ति, लोभ और प्रीति जैसे मनोविकारों पर भी निबन्ध लिखे हैं। उनकी शैली के सम्बन्ध में डॉ. राम विलास शर्मा ने लिखा है कि "उनकी शैली तार्किक विवेचन के लिए उपयुक्त होने के साथ आवश्यकतानुसार आवेशपूर्ण और आलंकारिक भी है। उसकी एक विशेषता जीवन का संचित अनुभव प्रकट करने वाली शब्दावली है। उनका व्यक्तित्व एक सहृदय और विनोदी साहित्य-प्रेमी और संसार-प्रेमी मनुष्य का है, पुस्तक-सेवी संन्यासी का नहीं। उनकी निर्भीकता, दृढ़ता, गहन अध्यवसाय और आत्मविश्वास के गुण उनके काव्य-सिद्धान्तों और साहित्यालोचन की तरह हिन्दी-प्रेमियों के लिए शिक्षा प्रद और प्रेरणादायक हैं।"

श्री शुक्ल की दृष्टि मानववादी थी इसीलिए वे काव्य के लिए लोकमंगल की भावना को महत्वपूर्ण मानते हैं। 'सूरदास', 'तुलसीदास', 'त्रिवेणी', 'चिन्तामणि' (भाग 1, 2) 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' आदि उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

पाठ-परिचय :

शुक्लजी ने इस निबन्ध में यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि किसी सीमित वर्ग के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाले धर्म की अपेक्षा विस्तृत जन-समूह के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाला धर्म उच्च कोटि का है। भक्त तो विश्व-कल्याण को ही अपना धर्म मानता है।

भरत और विभीषण के उदाहरण से शुक्लजी ने यह कहने का प्रयास किया है कि विश्व-हित में लगे हुए राम को कष्ट पहुँचाने वाला निन्दनीय है, इसीलिए भरत ने अपनी माता तथा विभीषण ने अपने भाई को अपना नहीं माना।

जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिए ताहि कोटि बैरी सम
जद्यपि परम सनेही।

निबन्ध में इन पंक्तियों के समावेश से कथ्य स्पष्ट हो गया है। तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में विश्व-हितकारी राम के द्रोही को त्यागने का उपदेश दिया है।

शुक्लजी के इस निबन्ध में मानस की धर्म भूमि के दर्शन होते हैं और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का चित्र सामने आ जाता है।

निबन्ध के प्रारम्भ में 'धर्म की रसात्मक अनुभूति ही भक्ति है' कहकर श्री शुक्ल ने धर्म तथा भक्ति के अन्तर्सम्बन्ध को अभिव्यक्त किया है।

☐ ☐ ☐ ☐

'धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है'—यह हम कहीं कह चुके हैं। धर्म है ब्रह्म के सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति जिसकी असीमता का आभास अखिल विश्व-स्थिति में मिलता है। इस प्रवृत्ति का साक्षात्कार परिवार और समाज ऐसे

छोटे क्षेत्रों से लेकर समस्त भू-मण्डल और अखिल विश्व तक के बीच किया जा सकता है। परिवार और समाज की रक्षा में, लोक-परिचालन में और समष्टि-रूप में, अखिल विश्व की शाश्वत स्थिति में सत् की इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि सत्स्वरूप की इस प्रवृत्ति का साक्षात्कार जितने ही विस्तृत क्षेत्र के बीच हम करते हैं, भगवत्स्वरूप की ओर उतनी ही बढ़ी हुई भावना हमें प्राप्त होती है। कुल-विशेष के भीतर ही जो इस प्रवृत्ति का अनुभव करेंगे, उनकी भावना कुल-नायक या कुल-देवता तक ही पहुँचेगी, किसी जाति या देश-विशेष के भीतर जो करेंगे, उनकी भावना उस जाति या देश के नेता अथवा उपास्य देवता तक पहुँचकर रह जाएगी। भक्त की भावना इतनी ही दूर जाकर सन्तुष्ट नहीं होती। वह अखिल विश्व के बीच सत् की इस प्रवृत्ति के साक्षात्कार की साधना करता है। उसके भीतर का 'चित्' जब बाहर 'सत्' का साक्षात्कार करता है तब 'आनन्द' का आविर्भाव होता है। इस साधना द्वारा वह भगवान् का सामीप्य-लाभ करता चला जाता है। इसी से तुलसी के राम 'अन्तरजामिहु ते बड़ बाहरजामी' लगते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति अर्थात् धर्म की ऊँची-नीची कई भूमियां लक्षित होती हैं, जैसे -गृहधर्म, कुलधर्म, समाजधर्म, लोकधर्म और विश्वधर्म या पूर्णधर्म। किसी परिमित वर्ग के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाले धर्म की अपेक्षा विस्तृत जनसमूह के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाला धर्म उच्चकोटि का है। धर्म की उच्चता उसके लक्ष्य के व्यापकत्व के अनुसार समझी जाती है। गृहधर्म या कुलधर्म से समाज धर्म श्रेष्ट है, समाज धर्म से लोक धर्म, लोक धर्म से विश्व धर्म, जिसमें धर्म अपने शुद्ध और पूर्ण स्वरूप में दिखाई पड़ता है। यह पूर्ण धर्म अंगी है और शेष धर्म अंग। पूर्ण धर्म, जिसका सम्बन्ध अखिल विश्व की स्थिति-रक्षा से है, वस्तुतः पुरुष या पुरुषोत्तम में ही रहता है, जिसकी मार्मिक अनुभूति सच्चे भक्तों को ही हुआ करती है। इस अनुभूति के अनुरूप उनके आचरण का भी उत्तरोत्तर विकास होता जाता है। गृहधर्म पर दृष्टि रखने वाले किसी परिवार की रक्षा देख कर, वर्ग धर्म पर दृष्टि रखने वाला किसी वर्ग या समाज की रक्षा देख कर और लोक धर्म पर दृष्टि रखने वाला लोक या समस्त मनुष्य-जाति की रक्षा देख कर आनन्द का अनुभव करता है। पूर्ण या शुद्ध धर्म का स्वरूप सच्चे भक्त ही अपने और दूसरों के सामने लाया करते हैं, जिनके भगवान् पूर्ण धर्मस्वरूप हैं। अतः वे कीट-पतंग से लेकर मनुष्य तक सब प्राणियों की रक्षा देख कर आनन्द प्राप्त करते हैं। विषय की व्यापकता के अनुसार उनका आनन्द भी उच्चकोटि का होता है।

धर्म की जो ऊँची-नीची भूमियाँ ऊपर कही गई है, वे उसके स्वरूप के सम्बन्ध मे, हैं उसके पालन के स्वरूप के सम्बन्ध में नहीं। पालन का स्वरूप और बात है। उच्च से उच्च भूमि के धर्म का आचरण अत्यन्त साधारण कोटि का हो सकता है, इसी प्रकार निम्न भूमि के धर्म का आचरण उच्च-से-उच्च कोटि का हो सकता है। गरीबों का गला काटने वाले चींटियों के बिलों पर आटा फैलाते देखे जाते हैं, अकाल-पीड़ितों की सहायता में एक पैसा चन्दा न देने वाले अपने डूबते मित्र को बचाने के लिए प्राण संकट में डालते देखे जाते हैं।

यह हम कई जगह दिखा चुके हैं कि ब्रह्म के सत्स्वरूप की अभिव्यक्ति और प्रवृत्ति को लेकर गोस्वामी जी की भक्ति-पद्धति चली है। उनके राम पूर्ण धर्म-स्वरूप हैं। राम के लीला-क्षेत्र के भीतर धर्म के विविध रूपों का प्रकाश उन्होंने देखा है। धर्म का प्रकाश अर्थात् ब्रह्म के सत्स्वरूप का प्रकाश इसी नाम-रूपात्मक व्यक्त जगत के बीच होता है। भगवान की इस स्थिति-विधायिनी व्यक्त कला में हृदय न रमाकर, बाह्य जगत् के नाना कर्म क्षेत्रों के बीच धर्म की दिव्य ज्योति के स्फुरण का दर्शन करके जो आँख मूँदे अपने अन्तः करण के किसी कोने में ही ईश्वर को ढूँढ़ा करते हैं, उनके मार्ग से गोस्वामी जी का भक्ति मार्ग अलग है। उनका मार्ग ब्रह्म का सत्स्वरूप पकड़ कर धर्म की नाना भूमियों पर से होता हुआ जाता है। लोक में जब कभी भक्त धर्म के स्वरूप को तिरोहित या आच्छादित देखता है, तब मानो भगवान् उसकी दृष्टि से खुली हुई आँखों के सामने से ओझल हो जाते हैं और वह वियोग की आकुलता का अनुभव करता है। फिर जब अधर्म का अन्धकार फाड़कर धर्म ज्योति फूट पड़ती है तब मानो उसके प्रिय भगवान् का मनोहर रूप सामने आ जाता है और वह पुलकित हो उठता है।

हमारे यहाँ धर्म से अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की सिद्धि कही गई है। अतः मोक्ष का—किसी ढंग के मोक्ष का मार्ग धर्म मार्ग से बिलकुल अलग-थलग नहीं जा सकता। धर्म का विकास इसी लोक के बीच हमारे परस्पर व्यवहार के भीतर होता है। हमारे परस्पर व्यवहारों का प्रेरक हमारा रागात्मक या भावात्मक हृदय होता है। अतः हमारे जीवन की पूर्णताकर्म (धर्म), ज्ञान और भक्ति तीनों के समन्वय में है। साधना किसी प्रकार की हो, साधक की पूरी सत्ता के साथ होनी चाहिए, उसके किसी अंग को सर्वथा छोड़ कर नहीं। यह हो सकता है कि कोई ज्ञान को प्रधान रखकर धर्म और उपासना को अंग रूप में लेकर चले; कोई भक्ति को प्रधान रखकर ज्ञान और कर्म को अंग रूप में रखकर चले। तुलसीदासजी भक्ति को प्रधान रख कर चलने वाले अर्थात् भक्ति-मार्गी थे।

उनकी भक्ति-भावना में यद्यपि तीनों का योग है, पर धर्म का योग पूर्ण परिमाण में है। धर्म-भावना का उनकी भक्ति-भावना से नित्य सम्बन्ध है।

'रामचरित मानस' में धर्म की ऊँची-नीची विविध भूमियों की झाँकी हमें मिलती है। इस वैविध्य के कारण कहीं-कहीं कुछ शंकाएं भी उठती हैं। उदाहरण के लिए भरत और बिभीषण के चरित्रों को लीजिए।

जिस भरत के लोक-पावन चरित्र की दिव्य दीप्ति से हमारा हृदय जगमगा उठता है, उन्हीं को अपनी माता को चुन-चुन कर कठोर वचन सुनाते देख कुछ लोग सन्देह में पड़ जाते हैं। जो तुलसीदास लोक धर्म या शिष्ट मर्यादा का इतना ध्यान रखते थे उन्होंने अपने सर्वोत्कृष्ट पात्र द्वारा उसका उल्लंघन कैसे कराया? धर्म की विविध भूमियों के सम्बन्ध में जो विचार हम ऊपर प्रकट कर आए हैं, उन पर दृष्टि रख कर यदि समझा जाए तो इसका उत्तर शीघ्र मिल जाता है। यह हम कह आए हैं कि धर्म जितने ही अधिक विस्तृत जन समूह के दुख-सुख से सम्बन्ध रखने वाला होगा, उतनी ही उच्च श्रेणी का माना जाएगा। धर्म के स्वरूप की उच्चता उसके लक्ष्य की व्यापकता के अनुसार समझी जाती है। जहाँ धर्म की पूर्ण, शुद्ध और व्यापक भावना का तिरस्कार दिखाई पड़ेगा, वहाँ उत्कृष्ट पात्र के हृदय में भी रोष का आविर्भाव स्वाभाविक है। राम पूर्ण धर्म-स्वरूप हैं, क्योंकि अखिल विश्व की स्थिति उन्हीं से है। धर्म का बिरोध और राम का बिरोध एक ही बात है। जिसे राम प्रिय नहीं, उसे धर्म प्रिय नहीं, इसी से गोस्वामी जी कहते हैं—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए तिन्हें कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

इस राम-विरोध का, धर्म-विरोध का व्यापक दुष्परिणाम भी आगे आता है। राम-सीता के घर से निकलते ही सारी प्रजा शोक मग्न हो जाती है, दशरथ प्राण त्याग करते हैं। भरत कोई संसार-त्यागी विरक्त नहीं थे कि धर्म का ऐसा तिरस्कार और उस तिरस्कार का ऐसा कटु परिणाम देख कर भी क्रोध न करते या साधुता के प्रदर्शन के लिए उसे पी जाते। यदि वे अपनी माता को, माता होने के कारण, कटु वचन तक न कहते तो उनके राम-प्रेम का, उनके धर्म-प्रेम का, उनकी मनोवृत्तियों के बीच क्या स्थान दिखाई पड़ता? जो प्रिय का तिरस्कार और पीड़न देख क्षुब्ध न हों, उनके प्रेम का पता कहां लगाया जाएगा? भरत धर्म-स्वरूप भगवान् रामचन्द्र के सच्चे प्रेमी और भक्त के रूप में हमारे सामने रखे गए हैं। अतः काव्य-दृष्टि से भी यदि देखिए, तो इस अमर्ष के द्वारा उनके राम प्रेम की जो व्यंजना हुई है, वह अपना एक विशेष लक्ष्य रखती है। महा काव्य या खण्ड काव्य के भीतर जहाँ धर्म पर क्रूर और निष्ठुर आघात सामने आता है, वहाँ

श्रोता या पाठक का हृदय अपराधी का उचित दण्ड-धिग्दण्ड के रूप में सही—देखने के लिए छटपटाता है। यदि कथा-वस्तु के भीतर उसे दण्ड देने वाला पात्र मिल जाता है तो पाठक या श्रोता की भावना तुष्ट हो जाती है। इसके लिए भरत से बढ़कर उपयुक्त और कौन पात्र हो सकता था? जिन भरत के लिए ही कैकेयी ने सारा अनर्थ खड़ा किया, वे ही जब उसे धिक्कारते हैं, तब कैकेयी को कितनी आत्म ग्लानि हुई होगी? ऐसी आत्म ग्लानि उत्पन्न करने की ओर भी कवि का लक्ष्य था। इस दरजे की आत्म ग्लानि और किसी युक्ति से उत्पन्न नहीं की जा सकती थी।

सारांश यह है कि यदि कहीं मूल या व्यापक लक्ष्य वाले धर्म की अवहेलना हो तो उसके मार्मिक और प्रभावशाली विरोध के लिए किसी परिमित क्षेत्र के धर्म या मर्यादा का उल्लंघन असंगत नहीं। काव्य में तो प्रायः ऐसी अवहेलना से उत्पन्न क्षोभ की अबाध व्यंजना के लिए मर्यादा का उल्लंघन आवश्यक हो जाता है।

अब बिभीषण को लीजिए। जिसे गृह नीति या कुल धर्म की स्थूल और संकुचित दृष्टि से लोग 'घर का भेदिया' या भ्रातृद्रोही कह सकते हैं, तुलसीदासजी ने उसे भगवद्भक्त के रूप में लिया है। उसे भक्तों की श्रेणी में दाखिल करते समय गोस्वामीजी की दृष्टि गृह नीति या कुल धर्म की संकुचित सीमा के भीतर बंधी न रह कर व्यापक लक्ष्य वाले धर्म की ओर थी। धर्म की उच्च और व्यापक भावना के अनुसार विभीषण को भक्त का स्वरूप प्रदान किया गया है। रावण लोक पीड़क है, उसके अत्याचार से तीनों लोक व्याकुल हैं, उसके अनुयायी राक्षस अकारण लोगों को सताते हैं और ऋषि-मुनियों का वध करते हैं। विभीषण को इन सब बातों से अलग दिखाया गया है। वह रावण का भाई हो कर भी लंका के एक कोने में साधु-जीवन व्यतीत करता है। उसके हृदय में अखिल लोक-रक्षक भगवान की भक्ति है।

सीता-हरण होने पर रावण का अधर्म पराकाष्ठा को पहुँचा दिखाई पड़ता है। हनुमान से भेंट होने पर उसे धर्मस्वरूप भगवान् के अवतार हो जाने का आभास मिलता है। उसकी उच्च धर्म भावना और भी जग पड़ती है। वह अपने बड़े भाई रावण को समझाता है। जब वह किसी प्रकार नहीं मानता, तब उसके सामने दो धर्मों के पालन का सवाल आता है—एक ओर गृह धर्म या कुल धर्म के पालन का, दूसरी ओर उससे अधिक उच्च और व्यापक धर्म के पालन का। भक्त की धर्म भावना अपने गृह या कुल के तंग घेरे के भीतर बद्ध नहीं रह सकती। वह समस्त विश्व के कल्याण या व्यापक लक्ष्य रखकर प्रवृत्त होती है। अतः वह चट लोक कल्याणविधायक धर्म का अवलम्बन करता है और धर्ममूर्त्ति भगवान श्रीराम की शरण में जाता है।

—"चिन्तामणि" भाग-1 से

अभ्यास-प्रश्न

1. निम्नलिखित शब्दों का समास-विग्रह कीजिए तथा समास का नाम भी बताइए—
   कुल-धर्म, भक्ति-भावना, नीलाम्बर, राम-वैदेही
2. निम्नलिखित शब्दों का अर्थ बतलाइए तथा उनको अपने वाक्यों में प्रयुक्त कीजिए—
   व्यक्त, साक्षात्कार, आविर्भाव, सर्वोत्कृष्ट।
3. कुल-धर्म से विश्व-धर्म को श्रेष्ठ क्यों माना गया है? अपने विचार लिखिए।
4. "धर्म की रसात्मक अनुभूति ही भक्ति है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
5. भरत के मुख से माता कैकेयी को कटु शब्द कहने को भी धर्मसम्मत क्यों कहा गया है? अपना मत स्पष्ट कीजिए।
6. "जाके प्रिय न राम वैदेही
   तजिए ताहि कोटि वैरी सम,
   जद्यपि परम सनेही।"
   इन पंक्तियों की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट कीजिए कि मानस की धर्म-भूमि से इस कथन का सीधा सम्बन्ध है।
7. 'विभीषण एक दृष्टि से कुल-द्रोही है' मानस में बिभीषण को एक सच्चे भक्त के रूप में प्रतिष्ठित करने के पीछे कौन सी दृष्टि रही है? समझाकर अपने विचार प्रकट कीजिए।
8. 'मानस की धर्म-भूमि' निबन्ध का संदेश अपनी भाषा में लिखिए।
9. विरक्त की रचना से एकदम मिलता जुलता रूप कौनसा है—
   (1) वियुक्त (2) वियोग (3) विनायक
   (4) विपुल (5) विनाश ( )
10. धर्म का विरोध और राम का विरोध एक ही बात है—इस अभिव्यक्ति में राम राज का सर्वाधिक शुद्ध आशय क्या लेंगे—
    (1) सत्य के पुत्र राम (2) रावण का शत्रु राम
    (3) राम राज्य का राज्य राम (4) सत्य का प्रतीक राम
    (5) मर्यादा पुरुषोत्तम राम ( )

——

भाभी

महादेवी वर्मा

लेखक-परिचय

श्रीमती महादेवी वर्मा रहस्यवादी कवयित्री के रूप मे सुविख्यात है। प्रौढ़ गद्य लेखिका के रूप में, विशेषतः संस्मरणात्मक रेखाचित्र-लेखिका के रूप में हिन्दी साहित्य में इनका अद्वितीय स्थान है। इनका जन्म सन् 1909 ई. में फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) के एक सम्पन्न कलाप्रेमी परिवार में हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा इन्दौर में हुई। इनका विवाह डा. रूपनारायण वर्मा के साथ हुआ। विवाह होने के बाद भी इन्होंने अपना अध्ययन-क्रम चालू रखा। महादेवीजी ने 1933 ई. मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। इन्होंने चित्रकला और संगीत मे प्रवीणता प्राप्त की। प्रयाग महिला विद्यापीठ की आचार्य के रूप मे की गई इनकी सेवाएँ स्तुत्य रही हैं।

श्रीमती वर्मा ने इलाहाबाद में साहित्यकार-संसद नामक संस्था स्थापित की। इस संस्था का उद्देश्य हिन्दी-लेखकों की सहायता करना है। श्रीमती महादेवीजी की साहित्यिक, शैक्षिक एवं सामाजिक सेवाओं के लिए भारत सरकार ने इन्हें 'पद्म भूषण' अलंकार से सम्मानित किया है।

महादेवी जी छायावादी युग की रहस्यवादी कवयित्री रही हैं। वेदना-मिश्रित माधुर्य इनके गीतों की प्रधान विशेषता है। 'यामा' और 'दीपशिखा' इनकी प्रसिद्ध कविता पुस्तकें हैं। 'सप्तपर्णा' काव्यानुवाद है।

कविता की भाँति महादेवीजी का गद्य भी बड़ा भावपूर्ण और अनूठा है। सामाजिक यथार्थ से जुड़ा होने के कारण यह सहज ही पाठकों को आकृष्ट कर लेता है। दलित और उपेक्षित मानव की मर्मव्यथा को मुखरित करने वाले इनके रेखाचित्रों और संस्मरणों ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। उनके संस्मरण 'स्मृति की रेखाएँ' और रेखाचित्र 'अतीत के चलचित्र' नाम से प्रकाशित हुए हैं। 'पथ के साथी' मे इस युग के प्रमुख साहित्यकारों के अत्यन्त मार्मिक व्यक्ति-चित्र संकलित हैं। 'शृंखला की कड़ियाँ' में आधुनिक नारी की समस्याओं पर लिखे गए लेख संगृहीत हैं। 'विवेचनात्मक गद्य' और 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' में महादेवीजी का आलोचक एवं विचारक-रूप देखा जा सकता है।

महादेवी जी की गद्य-शैली चित्रात्मक और काव्यमयी है। इनके विचारात्मक लेखों में तर्क और विश्लेषण की प्रधानता है। इनके भावात्मक गद्य में कल्पना और बिम्ब-योजना के दर्शन होते हैं। इनका गद्य भी काव्य की मधुरता में डूबा हुआ है। प्रत्येक पंक्ति एक नवसन्देश देती है तथा सोचने के लिए बाध्य कर देती

है। सामयिक विषयों पर भी महादेवीजी ने बहुत लिखा है। माता सरस्वती की इस अनन्य उपासिका का स्वर्गवास सन् 1990 ई. में हुआ। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में यह क्षति अपूरणीय ही रहेगी।

पाठ-परिचय

"भाभी" महादेवी का एक प्रसिद्ध संस्मरण है। महादेवीजी ने बाल-मन को स्नेह से सींचने वाली एक हिन्दू बाल-विधवा का सहज चित्रण किया है। हिन्दू विधवा को अनेक नियन्त्रणों के बीच जीना पड़ता है। महादेवीजी का बचपन इन्दौर में बीता था। वहां उनके घर के पास रहने वाली यह बाल-विधवा उनको सहज स्नेह देती थी। महादेवीजी इस महिला को "भाभी" कहकर पुकारती थीं। कभी-कभी विद्यालय में पढ़ी हुई कहानी सुनाती थी। "भाभी" उनके लिए गुड़िया सजाती थी। दोनों का समय बहुत आनन्द से बीत रहा था।

एक दिन महादेवीजी ने एक रंगीन साड़ी भाभी को दी। भाभी इसे ओढ़ कर प्रसन्न हो गई। उसके वृद्ध ससुर तथा युवा ननद ने यह दृश्य देख लिया। हिन्दू-विधवा रंगीन वस्त्र नहीं पहन सकती है। दोनों ने भला-बुरा कहा। डर के मारे भाभी बेहोश हो गई और बालिका महादेवी फूट-फूट कर रोई। इस घटना ने दोनों का मिलना सदा के लिए बन्द कर दिया।

इस संस्मरण में मानवीय संवेदना के दर्शन होते हैं। बाल-मन में उठने वाले भावों का सहज चित्रण है। शब्द चित्रों से सजा हुआ यह संस्मरण महादेवीजी की कृतियों में विशिष्ट स्थान रखता है। इसे पढ़कर ऐसा लगता है कि हम सारा दृश्य देख रहे हैं और उस वेदना का अनुभव कर रहे है जो महादेवीजी ने स्वयं भोगी।

☐ ☐ ☐

इतने वर्ष बीत जाने पर भी मेरी स्मृति, अतीत के दिन-प्रतिदिन गाढ़े होने वाले धुंधलेपन में एक-एक रेखा खींचकर, उस करुण कोमल मुख को मेरे सामने अंकित ही नहीं, सजीव भी कर देती है।

छोटे गोल मुख की तुलना में कुछ अधिक चौड़ा लगने वाला, पर दो काली रूखी लटों से सीमित ललाट, बचपन और प्रौढ़ता को एक साथ अपने भीतर बन्द कर लेने का प्रयास-सा करती हुई, लम्बी बरौनियों वाली भारी पलकें और उनकी छाया में डबडबाती हुई-सी आंखें, उस छोटे मुख के लिए भी कुछ छोटी सीधी-सी नाक और मानो अपने ऊपर छपी हुई हंसी से विस्मित होकर कुछ खुले रहने वाले ओठ समय के प्रवाह से फीके भर हो सके हैं, धुल नहीं सके।

घर के सब उजले-मैले, सहज-कठिन कामों के कारण, मलिन रेखा-जाल से गुंथी और अपनी शेष लाली को कहीं छिपा रखने का प्रयत्न-सा करती हुई,

कहीं कोमल, कहीं कठोर हथेलियां, काली रेखाओं में जड़े कांतिहीन नखों से कुछ भारी जान पड़ने वाली पतली उंगलियां, हाथों का बोझ संभालने में भी असमर्थ सी दुर्बल, रूखी पर गोर बांहें और मारवाड़ी लहँगे के भारी घेर से थकित से एक सहज सुकुमारता का आभास देते हुए, कुछ लम्बी उंगलियों वाले दो छोटे-छोटे पैर, जिनकी एड़ियों में आगन की मिट्टी की रेखा मटमैले महावर-सी लगती थी, भुलाए भी कैसे जा सकते हैं। उन हाथों से बचपन में न जाने कितनी बार मेरे उलझे बाल सुलझा कर बड़ी कोमलता से बांध दिए थे। वे पैर न जाने कितनी बार, अपनी सीखी हुई गंभीरता को भूल कर मेरे लिए द्वार खोलने, आगन में एक ओर से दूसरी ओर दौड़े थे। किस तरह मेरी अबोध अष्टवर्षीय बुद्धि ने उससे भाभी का सम्बन्ध जोड़ लिया था, यह अब बताना कठिन है। मेरी अनेक सहपाठिनियों के बहुत अच्छी भाभियां थीं, कदाचित् उन्हीं की चर्चा सुन-सुन कर मेरे मन ने, जिसने अपनी तो क्या दूर के सम्बन्ध की भी कोई भाभी नहीं देखी थी, एक ऐसे अभाव की सृष्टि कर ली, जिसको वह मारवाड़ी विधवा वधू दूर कर सकी।

बचपन का वह मिशन स्कूल मुझे अब तक स्मरण है, जहां प्रार्थना और पाठ्यक्रम की एकरसता से मैं इतनी रुआंसी हो जाती थी कि प्रतिदिन घर लौट कर नींद से बेसुध होने तक सबेरे स्कूल न जाने का बहाना सोचने से ही अवकाश नहीं मिलता था।

उन दिनों मेरी ईर्ष्या का मुख्य विषय नौकरानी की लड़की थी, जिसे चौका-बरतन करके घर में रहने को तो मिल जाता था। जिस कठोर ईश्वर ने मेरे भाग्य में नित्य स्कूल जाना लिख दिया था, वह माँ के ठाकुरजी में से कोई है या मिशन की सिस्टर का ईसू, यह निश्चय न कर सकने के कारण मेरा मन विचित्र दुविधा में पड़ा रहता था। यदि वह मां के ठाकुरजी में से कोई है तो आरती-पूजा से जी चुराते ही क्रुद्ध हो कर मेरे घर पर रहने का समय और कम कर देगा और यदि स्कूल में से है, तो बहाना बना कर न जाने से पढ़ाई के घण्टे और बढ़ा देगा, इसी उधेड़बुन में मेरा मन पूजा, आरती, प्रार्थना सब में भटकता ही रहता था।

इस अंधकार में प्रकाश की एक रेखा भी थी। स्कूल निकट होने के कारण कल्लू की बूढ़ी माँ मुझे किताबों के साथ वहां पहुँचा भी आती थी और ले भी आती थी और इस आवागमन के बीच में, कभी सड़क पर लड़ते हुए कुत्ते, कभी उनके भटकते हुए पिल्ले, कभी किसी कोने में बैठ कर पंजों से मुंह धोती हुई बिल्ली, कभी किसी घर के बरामदे में लटकते हुए पिंजड़े में मनुष्य की स्वर-साधना करता हुआ गंगाराम, कभी बतख और तीतरों के झुण्ड, कभी तमाशा दिखलाने वालों के टोपी लगाए हुए बंदर, ओढ़नी ओढ़े हुए बन्दरिया, नाचने-वाला रीछ आदि स्कूल की एकरसता दूर करते ही रहते थे।

हमारे ऊंचे घर से कुछ ही हटकर, एक ओर रंगीन, सफ़ेद, रेशमी और सूती कपड़ों से और दूसरी ओर चमचमाते हुए पीतल के बरतनों से सजी हुई एक नीची-सी दूकान में जो वृद्ध सेठजी बैठे रहते थे, उन्हें तो मैंने कभी ठीक से देखा नहीं परन्तु उस घर के पीछे वाले दरवाजे पर पड़े हुए पुराने टाट के परदे के छेद से जो आंखे प्रायः मुझे आते-जाते देखती रहती थीं, उनके प्रति मेरा मन एक कुतूहल से भरने लगा। कभी-कभी मन में आता था कि परदे के भीतर झांक कर देखूं पर कल्लू की मां मेरे लिए उस जन्तु-विशेष से कम नहीं थी, जिसकी बात कह-कह कर बच्चों को डराया जाता है। उसका कहना न मानने से वह मेरे हाल ही में छिदे कान की लौ दुखा सकती थी, चोटी बांधते समय बालों को खूब खींच सकती थीं, कपड़े पहनाते समय तंग गले वाले फ्रॉक को आंखों पर अटका सकती थी, घर में और स्कूल में मेरी बहुत-सी झूठी-सच्ची शिकायत कर सकती थी। सारांश यह कि उसके पास प्रतिशोध लेने के बहुत से साधन थे।

परन्तु, कल्लू की मां को चाहे उन आंखों की स्वामिनी से मेरा परिचय न भाता हो, पर उसकी कथा सुनाने में उसे अवश्य रस मिलता रहा। वह अनाथिनी भी है और अभागी भी। बूढ़े सेठ सब के मना करने पर भी इसे अपने इकलौते लड़के से ब्याह लाए और उसी साल लड़का बिना किसी बीमारी के ही मर गया। अब सेठजी का इसकी चंचलता के मारे नाक में दम है। न इसे कहीं जाने देते हैं, न किसी को अपने घर आने। केवल अमावस-पूनों एक ब्राह्मणी आती है, जिसे वे अपने-आप खड़े रह कर सीधा दिलवा कर रवाना कर देते हैं। वे बेचारे तो जाति-बिरादरी में भी इसके लिए बुरे बन गए हैं और इसकी निर्लज्जता देखो — ससुर दूकान में गए नहीं कि वह परदे से लगी नहीं। घर में कोई देखने वाला ही नहीं। एक ननद है जो शहर में ससुराल होने के कारण जब-तब आ जाती है और तब इसकी खूब पिटाई होती है, इत्यादि इत्यादि सूचनाएं कल्लू की मा की विशेष शब्दावली में और विचित्र भाव-भंगिमाओं के साथ मुझे स्कूल तक मिलती रहती थीं। परन्तु उस समय वे सूचनाएं मेरे निकट उतना ही महत्व रखती थी, जितनी कि नानी से सुनी हुई बेला रानी की कहानी। कथा में बेचैन कर देने वाला सत्य इतना ही था कि कहानी की राजकुमारी की आंखें पुराने टाट के परदे से गुजरने वाली बालिका को नित्य ताकती रहती थी। यह स्थिति तो कुछ सुखद नहीं कही जा सकती। यदि सुनी हुई कहानी के सब राजा, रानी, राजकुमार, राजकुमारी, दैत्य, दानव आदि सुनने वालों को इस प्रकार देखने लगें, तो कहानी सुनने का सब सुख चला जाए, यह कल्लू की मां की कहानी और परदे के छेद से देखने वाली आंखों ने मुझे समझा दिया था।

भूरे टाट में जड़ी-सी वे काली आंखें मेरी कल्पना का विषय ही बनी रहती, यदि एक दिन पानी बरसने से कल्लू की मां रुक न गई होती, पानी थमते ही मैं स्कूल से अकेली ही चल न दी होती और गीली सड़क पर उस परदे के सामने ही मेरा पैर फिसल न गया होता। बच्चे गिर कर प्रायः चोट के कारण न रो कर लज्जा से ही रोने लगते हैं। मेरे रोने का भी कदाचित् यही कारण रहा होगा, क्योंकि चोट तो मुझे याद नहीं आती।

कह नहीं सकती कि परदे से निकल कर, कब उन आंखों की स्वामिनी ने मुझे आंगन में खींच लिया, परन्तु सहसा विस्मय से मेरी रुलाई रुक गई। एक दुर्बल पर सुकुमार बालिका जैसी स्त्री अपने आंचल से मेरे हाथ और कपड़ों का कीचड़ मिला पानी पोंछ रही थी और भीतर दालान से वृद्ध सेठ का कुछ विस्मित स्वर कह रहा था—"अरे, यह तो वर्मा साहब की बाई है!"

उसी दिन से वह घर, जिसमें न एक भी झरोखा था, न रोशनदान, न एक भी नौकर दिखाई देता था, न अतिथि, और न एक भी पशु रहता था, न पक्षी, मेरे लिए आकर्षण बनने लगा। उस समाधि जैसे घर में लोहे के प्राचीर से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी संगी-साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद के, मानो निरंतर वृद्धा होने की साधना में लीन थी।

वृद्ध एक ही समय भोजन करते थे और वह विधवा ठहरी। दूसरे समय भोजन करना ही यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त था कि उसका मन विधवा के संयम-प्रधान जीवन से ऊब कर किसी विपरीत दिशा में जा रहा है।

प्रायः निराहार और निरन्तर मिताहार से दुर्बल देह ले कर वह कितना परिश्रम करती थी, यह मेरी बालक बुद्धि से भी छिपा न रहता था। जिस प्रकार उसका खण्डहर जैसे घर और लम्बे चौड़े आंगन को बैठ-बैठ कर बुहारना, आंगन के कुएं से अपने और ससुर के स्नान के लिए ठहर-ठहर कर पानी भरना और धोबी के अभाव में, मैले कपड़ों को काठ की मोगरी से पीटते हुए रुक-रुक कर साफ करना, मेरी हंसी का साधन बनता था, उसी प्रकार केवल जलती लकड़ियों से प्रकाशित, दिन में भी अंधेरी रसोई की कोठरी के घुटते हुए धुंए में से रह-रह कर आता हुआ खांसी का स्वर, कुछ गीली और कुछ सूखी राख से चांदी-सोने के समान चमका कर तथा कपड़े से पोंछ कर रखते समय शिथिल उंगलियों से छूटते हुए बरतनों की झनझनाहट मेरे मन में एक नया विषाद भर देती थी।

परन्तु काम चाहे जैसा ही कठिन रहा हो, शरीर चाहे कितना ही क्लांत रहा हो, मैंने न कभी उसकी हंसी से आभासित मुख-मुद्रा में अन्तर पड़ते देखा और न कभी काम रुकते देखा और इतने काम में भी उस अभागी का दिन द्रौपदी के चीर से होड़ लेता था। सवेरे स्नान, तुलसी-पूजा आदि में कुछ समय

बिता कर ही वह अपने अंधेरे रसोई घर में पहुंचती थी, परन्तु दस बजते-बजते ससुर को खिला-पिला कर, उसी टाट के परदे से मुझे शाम को आने का निमंत्रण देने के लिए स्वतंत्र हो जाती थी। उसके बाद चौका-बरतन कूटना-पीसना भी समाप्त हो जाता था, परन्तु तब भी दिन का अधिक नहीं तो एक प्रहर शेष रह ही जाता था। दूकान की ओर जाने का निषेध होने के कारण वह अवकाश का समय उसी टाट के परदे के पास बिता देती थी, जहां से कुछ मकानों के पिछवाड़े और एक-दो आते-जाते व्यक्ति ही दिख सकते थे, परन्तु इतना उसकी चंचलता का ढिंढोरा पीटने के लिए पर्याप्त था।

उस उन्नीस वर्ष की युवती की दयनीयता आज समझ पाती हूँ, जिसके जीवन में सुनहरे स्वप्न गुड़ियों के घरौंदे के समान दुर्दिन की वर्षा में केवल बह ही नहीं गए, वरन उसे इतना एकाकी छोड़ गए कि उन स्वप्नों की कथा कहना भी सम्भव नहीं हो सका।

ऐसी दशा में उसने आठ वर्ष की बालिका को ही अपने संगीहीन हृदय की सारी ममता सौंप दी, परन्तु वह बालिका तो उसके संसार में प्रवेश करने में असमर्थ थी, इसी से उसी गुड़ियों वाले संसार को अपनाया।

वृद्ध भी अपनी बहू के लिए ऐसा निर्दोष साथी पा कर इतने प्रसन्न हुए कि स्वयं ही बड़े आदर के साथ मुझे बुलाने-पहुंचाने लगे।

और, मां तो उस माता-पिता विहीन विधवा बालिका की कथा सुन कर ही मुख फेर कर आंखे पोंछने लगती थीं। इसी से धीरे-धीरे मेरी कुछ नाटी गुड़िया, उसका बेडोल सिर वाला पति, उसकी एक पैर से लंगड़ी सास, बैठने में असमर्थ ननद और हाथों के अतिरिक्त सब प्रकार से आकारहीन दोनों बच्चे, सब एक-एक कर भाभी की कोठरी में जा बैठे। इतना ही नहीं, उनकी चक्की से ले कर गहनों तक सारी गृहस्थी और डोली से ले कर रेल तक सब सवारियां उसी खंडहर को बसाने लगीं।

भाभी को तो सफेद ओढ़नी और काला लहंगा या काली ओढ़नी और सफेद बूंटीदार कत्थई लहंगा पहने हुए ही मैंने देखा था, पर उसकी ननद के लिए हर तीज त्यौहार पर बड़े सुन्दर रंगीन कपड़े बनते थे। कुछ भाभी की बटोरी हुई कतरन से और कुछ अपने घर से लाए हुए कपड़ों से गुड़ियों के लज्जा-निवारण का प्रबन्ध किया जाता था। भाभी घाघरा, कांचली आदि अपने वस्त्र सीना जानती थी, अतः मेरी गुड़िया मारवाड़िन की तरह शृंगार करती थी, मैंने स्कूल में ढीला पाजामा और घर में कलीदार कुरता सीना सीखा था, अतः गुड्डा पूरा लाला जान पड़ता था. चौकोर कपड़े के टुकड़े के बीच छेद करके वही बच्चों के गले में डाल दिया जाता था, अतः वे किसी आदिम युग की संतान से लगते थे।

भाभी के लिए काला अक्षर भैंस बराबर था इसलिए उस पर मेरी विद्वत्ता की धाक भी सहज ही जम गई थी। प्रायः सभी पशुओं के अंग्रेजी नाम बता कर और तस्वीरों वाली किताब से अंग्रेजी की कविता बड़े राग से पढ़ कर मैं उसे विस्मित कर चुकी थी, हिन्दी की पुस्तक से "माता का हृदय", "भाई का प्रेम" आदि कहानियां सुना कर उसकी आँखे गीली कर चुकी थी और अपने मामा को चिट्ठी लिखने की बात कह कर उसके मन में बीकानेर के निकट किसी गांव में रहने वाली बुआ की स्मृति जगा चुकी थी। वह प्रायः लम्बी सांस ले कर कहती—"पता नहीं जानती, नहीं तो तुमसे एक चिट्ठी लिखवा कर डाल देती।"

सबसे कठिन दिन तब आते थे, जब वृद्ध सेठ की सौभाग्यवती पुत्री अपने नैहर आती थी। उसके चले जाने के बाद भाभी के दुर्बल गोरे हाथों पर जलने के लम्बे, काले निशान और पैरों पर नीले दाग रह जाते थे, पर उनके सम्बन्ध में कुछ पूछते ही वह गुड़िया की किसी समस्या में मेरा मन अटका देती थी।

उन्हीं दिनों स्कूल में कसीदा काढ़ना सीख कर मैंने अपनी धानी रंग की साड़ी में बड़े-बड़े नीले फूल काढ़े। भाभी को रंगीन कपड़े बहुत भाते थे, इसी से उसे देख कर वह ऐसी विस्मय-विमुग्ध रह गई, मानो कोई सुन्दर चित्र देख रही हो।

मैंने क्यों मां से हठ करके वैसा ही कपड़ा मंगवाया और क्यों किसी को बिना बताए हुए छिपा-छिपा कर उस ओढ़नी पर नीले फूल काढ़ना आरम्भ किया, यह आज भी समझ में नहीं आता।

वह बेचारी बार-बार बुलावा भेजती, नये-नये गुड़ियों के कपड़े दिखाती, नये-नये घरोंदे बनाती, पर फिर भी मुझे अधिक समय तक ठहराने में असमर्थ हो कर वह बड़ी निराश और करुण मुद्रा से द्वार तक पहुंचा जाती।

उस दिन की बात तो मेरी स्मृति में गर्म लोहे से लिखी जान पड़ती है, जब उस ओढ़नी को चुपचाप छिपा कर मैं भाभी को आश्चर्य में डालने गई। शायद सावन की तीज थी, क्योंकि स्कूल के सीधे-सादे बिना चमक-दमक वाले कपड़ों के स्थान पर मुझे गोटा लगी हुई लहरिये की साड़ी पहनने को मिली थी और सवेरे पढ़ने बैठने की बात न कह कर मां ने हाथों में मेहंदी भी लगा दी थी।

वह दालान में दरवाजे की ओर पीठ किए बैठी कुछ बीन रही थी, इसी से दबे पांव जा कर मैंने उस ओढ़नी को खोल कर उसके सिर पर डाल दिया, तो वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। रंगों पर उसके प्राण जाते ही थे उस पर मैंने गुड़ियों और खिलौनों से दूर अकेले बैठे-बैठे अपने नन्हें हाथों से उसके लिए इतनी लम्बी-चौड़ी ओढ़नी काढ़ी थी। आश्चर्य नहीं कि वह क्षण भर के लिए अपनी उस स्थिति को भूल गई, जिसमें ऐसे रंगीन वस्त्र वर्जित थे। और नये खिलौने से प्रसन्न

बालिका के समान, एक बेसुधपन में उसे ओढ़ मेरी ठुड्डी पकड़ कर खिल-खिला पडी ।

और, जब किसी का विस्मय-जड़ित "बींदनी" सुन कर उसकी मूर्छा लौटी, तब हतबुद्धि ससुर मानो गिरने से बचने के लिए चौखट का सहारा ले रहे थे और क्रोध से जलते अंगारे-जैसी आंखों वाली, खुली तलवार-सी कठोर ननद, देहली से आगे पैर बढ़ा चुकी थी। अवश्य ही तीज रही होगी, क्योंकि वृद्ध स्वयं पुत्री को लेने गए थे ।

इसके उपरांत जो हुआ वह तो स्मृति के लिए भी अधिक करुण है । क्रूरता का वैसा प्रदर्शन मैंने फिर कभी नहीं देखा। बचाने का कोई उपाय न देख कर कदाचित् मैंने जोर-जोर से रोना आरम्भ किया, किन्तु बच तो वह तब सकी, जब मन से ही नहीं, शरीर से भी वे बेसुध हो गई ।

वृद्ध मुझे कैसे घर पहुंचा गए, घबराहट में मैं कितने दिनों तक ज्वर में पड़ी रही, यह सब तो गहरे कुहरे में छिप गया है, परन्तु बहुत दिनों के बाद जब मैंने फिर देखा, तब उन बचपन भरी आंखों में विषाद का गाढ़ा रंग चढ़ रहा था और ओठ, जिन पर किसी दिन हंसी छिपी-सी जान पड़ती थी, ऐसे कांपते थे मानो भीतर का क्रन्दन रोकने के प्रयास से थक गए हों। उस एक घटना में बालिका प्रौढ़ हो गई और युवती वृद्धा ।

फिर तो हम लोग इन्दौर से चले आये—और एक-एक करके अनेक वर्ष बीत जाने पर ही मैं इस योग्य बन सकी कि उसकी कुछ खोज-खबर ले सकूं। पता लगा कि वधू की रक्षा का भार संसार को सौंप कर वृद्ध कभी के बिदा हो चुके हैं, परन्तु कठोर संसार ने उसकी कैसी रक्षा की, वह आज तक अज्ञात है. इतने बड़े मानव समुद्र में उस छोटे-से बुद्बुद् की क्या स्थिति है, यह मैं जानती हूं. परन्तु तब भी कभी-कभी मन चाहता है कि बचपन में जिसने अपने जीवन के सूनेपन को भूल कर, मेरी गुड़ियों की गृहस्थी बसाई थी, खिलौनो का संसार सजाया था, उसे एक बार पा सकती ।

अभ्यास-प्रश्न

1. "लम्बे-लम्बे मिश्र वाक्यों में सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावना-बिम्ब चित्रित करना महादेवी के गद्य की विशेषता है"—
   इस कथन को सिद्ध करने के लिए इस कहानी में से दो उदाहरण चुनिए और उनकी भावनाओं का विश्लेषण कीजिए ।
2. "भाभी का रूप-चित्रण करने में महादेवी की कविता ज्यादा प्रखर हुई है" इसे सिद्ध करने के लिए इन चित्रणों की व्याख्या कीजिए —

   (1) ललाट (2) आंखें और पलकें

   (3) हथेलियां (4) उंगलियां

3. नौकरानी की लड़की से लेखिका को ईर्ष्या होने का क्या कारण था ?

4. स्कूल के जीवन को एकरस और उबाने वाला क्यों कहा गया है ?

5. निम्नलिखित के बारे में चारित्रिक टिप्पणियां तैयार कीजिए—

(1) भाभी, (2) कल्लू की मां, (3) वृद्ध सेठजी (4) ननद

6. क्यों कहा गया है—

(1) समाधि-जैसा घर।

(2) उस जन्तु विशेष से कम नहीं जिसकी बात कह कह कर बच्चों को डराया जाता है।

(3) उस अभागी का दिन द्रौपदी के चीर से होड़ लेता था।

(4) सबसे कठिन दिन तब आते थे जब वृद्ध सेठ की सौभाग्यवती पुत्री अपने नैहर आती थी।

(5) उस एक घटना से बालिका प्रौढ़ हो गई और युवती वृद्धा।

7. अधिक शुद्ध रूप बनाकर लिखिए—

(1) बचपन का वह मिशन स्कूल मुझे अब तक स्मरण है।

(2) स्कूल में मेरी बहुत सी झूठी-सच्ची शिकायत कर सकती थी।

(3) उसके पास प्रतिशोध लेने के बहुत से साधन थे।

(4) अपने-आप खड़े रह कर सीधा दिलवाकर रवाना कर देते हैं।

(5) नये-नये गुड़ियों के कपड़े दिखाती।

8. इन पदों का विश्लेषण करके निर्माण की प्रक्रिया बताइए—

(1) दिन-प्रतिदिन (2) प्रौढ़ता
(3) प्रौढ़ (4) सहज-कठिन
(5) चौका-बरतन (6) उधेड़-बुन
(7) आते-जाते (8) जब-तब
(9) निराहार (10) मिताहार

9. अर्थगत अन्तर स्पष्ट कीजिए—

(1) प्रतिदिन, दिन-प्रतिदिन (2) निराहार, मिताहार
(3) सुनकर, सुन-सुन कर (4) एक रसता, समरसता
(5) इकलौता, एक मात्र

10. आस प्रत्यय के साथ पुल्लिंग विभक्ति रखकर जो शब्द नहीं बना हो उसे छाँटिए—

(1) रूंआसा (2) कुहासा
(3) पिपासा (4) धुआंसा
(5) बतासा

11. भाभी के प्रताड़ित और विवश होने का मुख्य कारण किसे माना जा सकता है—

(1) उसका निरक्षर होना

(2) उसकी ननद का उग्र स्वभाव

(3) लोक लाज का भय

(4) उसके ससुर का धर्म भीरु स्वभाव

(5) सब ओर से निराश्रित और असहाय होना ।

——

फिर से सोचने की आवश्यकता है

हजारी प्रसाद द्विवेदी

जन्म 1907 ई.

मृत्यु 1979 ई.

लेखक-परिचय :

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के शीर्षस्थ साहित्यकारों में से हैं । उनका जन्म 1907 ई. में बलिया जिले में 'दुबे का छपरा' गाँव में सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था । उन्होंने अपने प्रपितामह तथा पूजनीया माता से संस्कृत का ज्ञान विरासत में प्राप्त किया था ।

उन्होंने काशी विश्वविद्यालय से 1930 ई. में ज्योतिषाचार्य तथा इण्टर की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं । इसी वर्ष वे प्राध्यापक बनकर शान्ति निकेतन चले गए । वहाँ वे लगभग 20 वर्ष तक कार्य करते रहे । वे दस वर्ष पर्यन्त हिन्दी-भवन के अध्यक्ष रहे । यहाँ रहते हुए द्विवेदीजी कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के निकट सम्पर्क में आए । रवि बाबू की मानवतावादी जीवन-दृष्टि ने द्विवेदीजी के साहित्य-चिन्तन और लेखन-शैली पर अमिट छाप अंकित कर दी । वास्तव में शान्ति-निकेतन ने द्विवेदीजी को नवीन आस्था और विश्वास का जीवन-दर्शन दिया ।

1950 ई. में वे काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष बने । वे वर्षों तक काशी नागरी प्रचारिणी सभा के उपसभापति और नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक रहे । 1960 ई. में वे पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष तथा प्रोफेसर बन कर चंडीगढ़ चले गए ।

द्विवेदीजी का यह दृढ़ विश्वास रहा है कि सबसे श्रेष्ठ मनुष्य है । मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं । वे उच्च कोटि के साहित्य में मनुष्य की श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित देखना चाहते थे । वे उसी कवि और रचनाकार को श्रेष्ठ मानते थे जो मनुष्य को प्रतिष्ठित करने से सम्बद्ध लेखन करता था ।

उन्होंने आलोचना तथा ललित निबन्धों की अनेक पुस्तकें लिखी हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उनकी अनूठी रचना है। इस उपन्यास में द्विवेदीजी की भाषा का सहज प्रवाह सबका मन मोह लेता है। उनकी कतिपय श्रेष्ठ रचनाएँ हैं—'सूर-साहित्य', 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'कबीर', 'बाणभट्ट की आत्म कथा', 'अशोक के फूल', 'कल्पलता', 'विचार और वितर्क', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' आदि।

श्री द्विवेदीजी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। इनकी रचनाएँ मर्मस्पर्शी हैं तथा स्वतन्त्र-चिन्तन के लिए प्रेरित करने वाली हैं। हिन्दी भाषा के प्रति इनका सहज प्रेम सर्वत्र दृष्टिगत होता है। भारत सरकार ने डॉ. द्विवेदी को 'पद्म विभूषण' से अलंकृत किया था। उनकी शैली विवेचन-प्रधान, प्रसादात्मक और अनुरंजक है। उनकी भाषा की सामर्थ्य अनूठी है, वह सदैव उनके भावों और विचारों का अनुसरण करती है।

पाठ-परिचय :

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने इस निबन्ध में राष्ट्रभाषा की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं। नब्बे फी सदी जनता द्वारा समझी और बोली जाने वाली भाषा को विशेष महत्वपूर्ण मानने का भाव द्विवेदीजी को व्यथित कर रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपरान्त भी इस प्रकार का चिन्तन उनको बहुत कष्ट देता है। स्वतन्त्र देश के नागरिक को अपनी भाषा के माध्यम से आगे बढ़ने का अधिकार मिलना ही चाहिए। वे 'फिर से सोचने की आवश्यकता है' निबन्ध में सभी देश वासियों को यही प्रेरणा दे रहे हैं कि वे इस बिन्दु पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें तथा मानसिक गुलामी से मुक्त हों।

निबन्ध की भाषा सरल एवं प्रवाहयुक्त है। श्री द्विवेदीजी की चिन्तन की गहराई के प्रत्येक पंक्ति में दर्शन होते हैं।

□ □ □ □

आजकल मेरे मन में एक बड़ा सवाल उठा हुआ है। बहुत पहले मैं इसका जवाब पा चुका था, सन्तुष्ट भी था, लेकिन हाल में देश के अनेक ज्ञानी-गुणी लोगों के सम्पर्क में आने के बाद चित्त विचलित हो उठा है। मैंने जो उत्तर पाया था, वह क्या सही था? यद्यपि भीतर से आवाज आती है कि उत्तर तुमने पाया था वही सही है और जो विचिकित्सा इस समय खड़ी है वह गलत है, तो भी मेरे चित्त में आज नये सिरे से उस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए प्रयत्न शुरू हो गया है। सत्संगति की महिमा कम-से-कम इस देश में अज्ञात नहीं रह गई है और मैं तो व्याकुलता के साथ अनुभव कर रहा हूँ कि सत्संगति ने मेरे अन्तरतम को आलोड़ित कर रखा है। भीतर की आवाज केवल आदत का नतीजा है। एक खास ढंग से सोचते रहने वाला आदमी उसी ढंग की आवाज सुना करता है।

जिन लोगों की वाणी पर विश्वास करके आज तक चलता रहा हूँ, वे ऐसा नहीं मानते। रवीन्द्रनाथ ने कहा कि तू लोगों की बात पर कान न दे, हजार-हजार आकर्षण से खिचा-खिचा भटकता न फिर। ऐसा हो कि तेरा हृदय जाने कि तेरे हृदय में ही तेरा राजा बैठा है—

लोकेर कथा दिस ने काने,
फिरिस ने आर हजार टाने,
येन रे होर हृदय जाने, हृदय तोर आछेन राजा !

बैठा होगा, लेकिन आज दुनिया की बातों को अनसुनी करने की शक्ति नहीं रह गई है। हजार-हजार आकर्षण बुरी तरह खींच रहे हैं और हृदय-देश में स्थित राजा की आज्ञा के पालन में झिझक अनुभव हो रही है।

प्रश्न यह है कि काम निकाल लेना बुद्धिमानी है या मान के लिए मर मिटना मनुष्यत्व की निशानी है ? पहला मत उन लोगों का है जो समझदार माने जाते हैं, जो भावुक नहीं होते, जिनकी दृष्टि सीधे परिणाम तक पहुँची होती है। वे हाथ पर रखे हुए आँवले के फल के समान प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता और अनुपयोगिता को स्पष्ट देख लेते हैं। उनकी दृष्टि में काम बड़ी चीज है, मान केवल भावुकता का नामान्तर है। ऐसे समझदार लोग काम को बड़ा मानते हैं, मान उनकी दृष्टि में नगण्य है। पुराने काव्य की उतावली नायिका के समान वे कहते हैं कि—

मान घटे तें कहा घटिहै,
जो पै प्रान पियारे के दर्शन पैये।

दूसरे मत के मानने वाले लोग सचमुच भावुक होते हैं। उनकी दृष्टि में मान का बड़ा महत्त्व है। वे मान के साथ दिए गए विष को पी लेते है। और गर्वपूर्वक घोषणा करते हैं कि—

मान सहित विष खाइके शंभु भये जगदीश।
बिना मान अमृत पिए राहु कटाए सीस ॥

ऐसे लोगों ने अनेक प्रकार के तत्व-दर्शन बना रखे हैं। केवल जीवन-धारण के लिए उपयोगी प्रयोजनों के पीछे दौड़ना पशु का धर्म है। मनुष्य प्रयोजन के पीछे दौड़ने के लिए नहीं बना है, प्रयोजनों से जो अतीत धर्म है, वही मनुष्यत्व है। शक्ति, प्रेम, दया, सहानुभूति आदि गुण, स्थूल प्रयोजनों की सिद्धि करें तो, और न करें तो, बड़े हैं और पालनीय हैं। आवश्यकता पड़ने पर मनुष्य को इन वास्तविक धर्मों की रक्षा के लिए अपने आप को बलि चढ़ा देना चाहिये। मनुष्य इसलिए मनुष्य है कि उसमें मनुष्यत्व-धर्म है।

जलदानेन हि जलदः न हि जलदो पुंजितः धूमः।

जलद वह है जो जल दे सके, पुंजित धूम को जलद नहीं कह सकते। पहली श्रेणी के लोग समझदार कहे जाते हैं, दूसरी श्रेणी के भावुक।

जो लोग समझदार हैं, उनकी बात सुन कर मन अचरज से अवाक् ही रहता है कि इस देश की राज्य-व्यवस्था यदि ठीक चलती है, दस पढ़े-लिखे आदमियों को अगर ठीक से अन्न मिल जाता है, तो अंग्रेजी को क्यों छोड़ा जाए? आखिर डेढ़ सौ वर्षों तक हम लोग अंग्रेजी के ताबेदार रहे हैं। इतिहास को धो-पोंछ कर फेंक नहीं दिया जा सकता। सिर्फ इसलिए कि वह हमारे पुराने शासकों की भाषा थी, अंग्रेजी को विदेशी नहीं कहा जा सकता है! क्या यह तथ्य नहीं है कि इस देश के बीसियों बाप-बेटों का पत्र-व्यवहार अंग्रेजी में होता है? बहुत से ऐसे बाप-बेटों और पति-पत्नियों की नामावली आसानी से गिना दी जा सकती है। क्या हमारे नेता-गण अपना काम इसी भाषा में नहीं चलाते थे? डेढ़ सौ वर्षों के निरन्तर अभ्यास के कारण समूचे देश में यह भाषा प्रतिष्ठित हुई है, क्यों इसका निरादर किया जाय? यह क्या भारतवर्ष का परम सौभाग्य नहीं है कि उसकी आधी फीसदी जनता इस संसार की सर्वश्रेष्ठ भाषा से परिचित है? इस महिमामयी भाषा की तुलना में देशी भाषाओं में क्या धरा है? सिर गिनने से देश का काम नहीं चलता, दिमाग गिनना है। तुम कहते हो, देश की जनता सौ फीसदी देशी-भाषा जानती है। यह केवल सिर गिनना मात्र है। गिनती दिमाग की होनी चाहिए। देश की आधी फीसदी की भी आधी फीसदी दफ्तर की फाइलों पर नोट लिखने की कला में प्रवीण है और उस आधी फीसदी की आधी फीसदी देश-विदेश में लाज-हया छोड़कर अंग्रेजी बोल लेने की कला में पूर्ण दक्ष सिद्ध हो चुकी है, तो क्या हुआ? दिमाग की गणना होनी चाहिए। अंग्रेजी अब इस देश में विदेशी भाषा नहीं है, वह भी हमारी राष्ट्रीय भाषा है। अभी भी अंग्रेजों के बहुत से बच्चे इस भाषा को बोलते हैं।

और देशी भाषाओं में रखा ही क्या है! तुलसीदास की रामायण से या तुकाराम के अभंगों से देश का शासन नहीं चल सकता। भारतवर्ष में एक भी भाषा ऐसी नहीं है, जिसमें कोई समझदार न्यायाधीश फैसला लिख सके। वह फाँसी की सजा दे सकता है, लेकिन दण्डित व्यक्ति को उसी की भाषा में समझा नहीं सकता कि क्यों उसे फाँसी दी गई। यदि वह पूछे कि दयानिधान, मुझे यह तो बता दीजिए कि मुझे फाँसी क्यों दी गई, तो उत्तर यह है कि तुम मूर्ख लोगों की भाषा में इतनी शक्ति नहीं कि हमारे निर्णय को व्यक्त कर सके। यदि जानना ही चाहते हो तो हमारी ही जैसी अंग्रेजी जानने वाले किसी वकील को हजार-पाँच सौ रुपया देकर ठीक कर लो, जो समझा सके कि क्यों तुम्हें फाँसी दी गई। तुम्हें सिर्फ फाँसी पर झूल जाने का अधिकार है। क्यों और कैसे का निर्णय बड़े लोगों

के बीच की बात है। देशी भाषाओं में फैसला नहीं लिखा जा सकता। जनता का शासन केवल बात की बात है। जनता की भाषा का नारा केवल वोट प्राप्त करने वालों के लटकों में से एक है। शासन की मशीन नारों पर नहीं चलती, फाइलों पर नोट लिखने की विद्या बड़ी मेहनत से सीखी जा सकती है। जनता की सुविधा की थोथी दलील पर परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

ऊपर के वाक्यों को पढ़ने वाले व्यक्ति के मन में प्रतिक्रिया हो सकती है कि मैं व्यंग्य और विनोद की भाषा लिख रहा हूँ, परन्तु मैं सच्चाई के साथ कहता हूँ कि मैंने बुद्धिमान् लोगों से जो बातें सुनी हैं, उनका यही अर्थ हो सकता है। मैंनें पंडितों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के प्रति आजीवन श्रद्धा का भाव बनाए रखा है, मैंने ऐसे लोगों की प्रत्येक बात को आदर और श्रद्धा से सुनने का नियम बनाया है और इसीलिए आज मेरा चित्त बहुत चंचल है। मैं व्याकुल भाव से सोचता हूँ कि आज से दस वर्ष पहले तक जिन दीवानों ने सर पर कफन बांधकर देश की कोटि-कोटि जनता को शोषण और परमुखापेक्षिता से बचाने के लिए अचिन्तनीय यातनाएँ सही थीं, उन्होंने क्या यही स्वप्न देखा था ? आज खुल्लमखुल्ला कहा जाने लगा कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के नवीन आवेश में संविधान बनाने वाले देशभक्तों ने देश की भाषा-सम्बन्धी नीति को गलत ढंग से स्वीकार किया। अब नशा उतर गया है। पद-पद पर गोलियों के सामने सीना तान देने वाले दीवानों की संख्या घट गई है। इनको मूर्ख तो क्या कहा जाए, पर काम उन्होंने बुद्धिमानी का नहीं किया। स्वतन्त्रता-दिवस के अवसर पर जब बुद्धिमान लोग अपनी तरक्की का स्वप्न देखा करते थे, उस समय झंडा लेकर चिल्ला-चिल्लाकर अपनी सांस्कृतिक स्वतन्त्रता की घोषणा करने वाले 'अनपढ़' नौजवानों का जमाना लद चुका है, अब हमें धैर्य और विवेक के साथ विचार करना चाहिए। डेढ़ सौ वर्षों तक अनेक अपमान और तिरस्कार की छाया में सीखी हुई मालिकों की बोली को यों ही नहीं भुला देना चाहिए ! वह वस्तुतः हमारी राष्ट्रीय जबान हो गई है। आज जो विदेशों में हमारी धाक है, वह इसी बोली के कारण है। यह गलत बात है कि गाँधी और नेहरू ने कोई बड़ी बात कही है, इसलिए दुनिया उनकी पूजा करती है। उनकी पूजा का प्रधान कारण अंग्रेजी बोली है। देखो, देश में इस बोली की पढ़ाई का स्तर गिरता जा रहा है, ऐसा न हो कि गाढ़े पसीने की यह कमाई यों ही नष्ट हो जाए। इसे बचाओ। दरिद्र देशी-भाषाओं के आक्रमण से कहीं यह मार न डाली जाए। सुनता हूँ और सोचता हूँ कि सचमुच ही क्या कोई अनर्थ होने जा रहा है ? सचमुच ही जिन लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी, उनमें पागलपन ही पागलपन था या कहीं होश हवास भी था ? इनसे बुद्धिमान

लोगों की बात क्या यों ही टाल दी जाए ? आखिर ये लोग अनुभवी है। बिना सोचे-समझे कुछ नहीं कहते। इनकी बातों में कुछ-न-कुछ सार तो अवश्य होगा।

लेकिन फिर मैं सोचता हूँ कि प्राण देने का साहस जिन्होंने किया था, उनको इतनी आसानी से छोड़ा भी नहीं जा सकता। कितने लोग हैं जो किसी आदर्श के लिए कष्ट सहन कर सकते हैं ? कितने लोग हैं जो उसी प्रकार उठकर अनीति और अत्याचार का विरोध कर सकते हैं, जिस प्रकार स्वतन्त्रता की रट लगाने वाले भावावेशी नौजवानों ने किया था ? मनुष्य क्या केवल इसलिए पैदा हुआ है कि जो कुछ जैसा है, उसे चुपचाप स्वीकार कर ले ? मेरा अन्तरतर ऐसा नहीं मानना चाहता। केवल अक्लमन्दी से सिर छिपा लेना ही बड़ी बात होती, तो मनुष्य कीड़े-मकोड़ों से अधिक न होता। मनुष्य इसलिए 'मनुष्य' है कि उसने सृष्टि की धारा को अपने पुरुषार्थ से अनुकूल दिशा में मोड़ा है। कई बार उस पर गलत ढंग की अक्लमन्दी का नशा छा जाता है। वह अपनी दुर्बलताओं को तत्वचिन्तक मनीषी की भाषा में महनीय बनाने का प्रयत्न करता है। अपनी आदतों को फलसफे का रूप देता है, परन्तु इससे गलतियाँ या दुर्बलताएँ बड़ी नहीं हो जातीं। जो तर्क इस दृष्टि से दिए जाते हैं कि हमारी आदतें और लतें चारित्र्य का बाना धारण करके प्रकट हों, वे तर्काभास मात्र हैं। अन्तर्यामी सब समय तर्कों के द्वारा अपनी योजना नहीं प्रकट करते। भावावेग, तर्कों की अपेक्षा अधिक गहराई से निकलते हैं। वे अन्तरतर में बैठे हुए अज्ञात देवता के तर्जनी-संकेत पर चलते हैं। तथाकथित अक्लमन्दी और कई बार निष्क्रियता, लत और आदत के इंगित का नामान्तर मात्र होता है।

कदाचित् आज यह सोचने की आवश्यकता आ पड़ी है कि हम अपनी दुर्बलताओं को महनीय बनाने का यत्न तो नहीं कर रहे हैं, अपनी निष्क्रियता को तत्ववाद का रूप तो नहीं दे रहे हैं, अपनी अक्षमताओं को गौरव देने के लिये तर्काभासों का सहारा तो नहीं ले रहे हैं ? क्या करोड़ों की उपेक्षा करके कुछ थोड़े-से लोगों की सुविधा को बहुत बड़ा लाभ माना जा सकता है ? क्या सचमुच स्वभाषा की उपेक्षा से देश महान् बनेगा ? हमें फिर से सोचना पड़ेगा।

अभ्यास-प्रश्न

1. निम्नलिखित शब्दों का सन्धि-विच्छेद कीजिए तथा सन्धि का नाम भी बतलाइए—

   अत्याचार, परमुखापेक्षी, न्यायोचित, निराकार।

2. निम्नलिखित शब्दों का अर्थ लिखिए तथा उनका अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए—

   तत्वचिन्तक, प्रतिष्ठित, भावुक, आलोड़ित

3. लेखक ने राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में फिर से सोचने की आवश्यकता अनुभव क्यों की है ? विचारपूर्वक उत्तर दीजिए ।

4. आधी से आधी फीसदी जनता द्वारा समझी और बोली जाने वाली भाषा को अधिक महत्त्व देने को द्विवेदी ने बुरा क्यों माना है ? इस सम्बन्ध में अपने विचार लिखिए ।

5. समझदार तथा भावुक के अन्तर को लेखक ने किस उदाहरण से स्पष्ट किया है ?

6. "देशी भाषाओं में रखा ही क्या है ? तुलसीदासजी की रामायण तथा तुकाराम के अभंगों से देश का शासन नहीं चल सकता।" लेखक के इस कथन के पीछे छिपी हुई पीड़ा को अपनी भाषा में लिखिए ।

7. "लेकिन फिर मैं सोचता हूँ कि प्राण देने का साहस जिन्होंने किया था उनको इतनी आसानी से छोड़ा भी नहीं जा सकता।" इन पंक्तियों के सम्बन्ध में अपने विचार लिखिए ।

8. "मनुष्य इसलिए मनुष्य है कि उसने सृष्टि की धारा को अपने पुरुषार्थ से अनुकूल दिशा में मोड़ा है।"
द्विवेदीजी ने मनुष्य की शक्ति के सम्बन्ध में यह प्रेरक कथन कहा है। इस कथन के सम्बन्ध में अपने विचार लिखिए ।

9. निम्नलिखित में से वह शब्द छांटकर बताइए जिसमें "स्व" का प्रयोग उपसर्ग के रूप में नहीं हुआ हो—
(1) स्वागत (2) स्वभाव (3) स्वभाषा
(4) स्वतंत्र (5) स्वस्थ ( )

10. प्रस्तुत पाठ का मुख्य कथ्य क्या है ?
(1) अंग्रेजी के प्रति अनावश्यक अनुराग पर व्यंग्य
(2) मान के लिए मर मिटने का उपदेश
(3) तत्वदर्शन की महत्ता का प्रतिपादन
(4) राज-काज में अंग्रेजी की वकालत
(5) जो कुछ जैसा है उसे चुपचाप सहन कर लेने का उपदेश ( )

सच्ची वीरता

सरदार पूर्णसिंह

लेखक-परिचय :

सरदार पूर्णसिंह का जन्म जिला ऐबटाबाद के सलहद स्थान पर सन् 1882 ई. में हुआ। इनकी मृत्यु 31 मार्च, 1931 ई. में हुई। ये स्वामी रामतीर्थ के शिष्य और उदार धार्मिक प्रवृत्ति के सज्जन थे। आप हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू तथा पंजाबी भाषाओं के ज्ञाता थे। आपने हिन्दी में थोड़ा ही लिखा है, किन्तु जो कुछ लिखा है वह अमर है।

आपके चार भावात्मक निबन्ध बहुत प्रसिद्ध है—'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता', और 'नयनों की गंगा'। वास्तव में ये निबन्ध उनकी हार्दिक अनुभूति के सच्चे उद्गार हैं। जीवन और जगत को उन्होंने हृदय की आँखों से देखा है। उनके निबन्धों में विचारों और भावों को एक अनूठे ढंग से मिश्रित करने वाली नई शैली मिलती है।

आपकी बात कहने का ढंग बड़ा चमत्कारिक है। बीच-बीच में कथा, उदाहरण और व्यंग्यात्मक दृष्टान्त आ जाने से शैली बड़ी रोचक और आकर्षक हो गई है। उसमें मार्मिक व्यंजना है और उद्बोधन की अपूर्व शक्ति है। छोटे-छोटे और सन्तुलित वाक्य आपकी रचना-शैली की एक और महत्वपूर्ण विशेषता है।

सरदार पूर्णसिंह किसी भी भाव का शब्द-चित्र उतार देते हैं। एक ही भाव अनेक वाक्यावलियों में गुम्फित होकर दीप्त हो जाता है। उनके निबन्धों में सुसम्बद्धता का गुण है।

इन सब गुणों के आधार पर कहा जा सकता है कि सरदार पूर्णसिंह विचारों की मौलिकता, भावों की गहनता, शैली की सजीवता और भाषा की शक्तिमत्ता के विचार से हिन्दी के अद्वितीय भावात्मक निबन्ध-लेखक हैं। 'सच्ची वीरता' उनकी भावमयी रचना-शैली का एक सजीव उदाहरण है।

पाठ-परिचय :

'सच्ची वीरता' निबन्ध में वीर के गुणों को बतलाने का उत्तम प्रयास किया गया है। सच्चे वीर को धीर, गंभीर और आजाद कहा गया है। वे सत्व गुण के समुद्र में निमग्न रहते हैं तथा निरन्तर आत्मिक उन्नति में लगे रहते हैं। वे टीन के बर्तन के स्वभाव को छोड़कर सदैव उच्च आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

सरदार पूर्णसिंह ने इस निबन्ध में कायर तथा वीर के अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। कायर केवल पढ़कर बात कर सकते हैं किन्तु समय आने पर वे पीछे हट जाते हैं। वीर अपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तत्पर

रहते हैं। यह निबन्ध नई पीढ़ी में चेतना का संचार करने वाला है। देश के नव निर्माण का कार्य चरित्रवान तथा निर्भीक युवक ही कर सकते हैं।

सरदार पूर्णसिंह ने तैमूर, गुरुनानक तथा भगवान शंकर के उदाहरण देकर निबन्ध को सजीव बना दिया है। वीर निरन्तर महान लक्ष्य की ओर बढ़ते रहते हैं। सरदार पूर्णसिंह का यह निबन्ध आज की परिस्थितियों में अत्यन्त प्रेरक है। निरन्तर आन्तरिक उन्नति में लगे रहने वाले सच्चे वीर राष्ट्र-निर्माण का महान कार्य कर सकते हैं।

□ □ □ □

सच्चे वीर पुरुष धीर, गम्भीर और आजाद होते हैं। उनके मन की गंभीरता और शान्ति समुद्र की तरह विशाल और गहरी, या आकाश की तरह स्थिर और अचल होती है। वे कभी चंचल नहीं होते। रामायण में वाल्मीकि ने कुम्भकरण की गाढ़ी नींद में वीरता का एक चिह्न दिखलाया है। सच है, सच्चे वीरों की नींद आसानी से नहीं खुलती। वे सत्वगुण के क्षीर-समुद्र में डूबे रहते हैं कि उनको दुनिया की खबर ही नहीं होती। वे संसार के सच्चे परोपकारी होते हैं। ऐसे लोग दुनिया के तख्ते को अपनी आँख की पलकों से हलचल में डाल देते हैं। जब ये शेर जाग कर गर्जते हैं, तब सदियों तक इनकी आवाज की गूंज सुनाई देती रहती है और सब आवाजें बन्द हो जाती हैं। वीर की चाल की आहट कानों में आती रहती है और कभी मुझे और कभी तुझे मद-मत्त करती है। कभी किसी की और कभी किसी की प्राण सारंगी वीर के हाथ से बजने लगती है।

सत्त्वगुण के समुद्र में जिनका अन्तःकरण निमग्न हो गया वे ही महात्मा, साधु और वीर हैं। वे लोग अपने क्षुद्र जीवन को परित्याग कर ऐसा ईश्वरीय जीवन पाते हैं कि उनके लिए संसार के सब अगम्य मार्ग साफ हो जाते हैं। आकाश उनके ऊपर बादलों के छाते लगाता है, प्रकृति उनके मनोहर माथे पर राजतिलक करती है। हमारे असली और सच्चे राजा ये ही साधु पुरुष हैं। हीरे और लाल से जड़े हुये, सोने और चाँदी से जर्क-बर्क सिंहासन पर बैठने वाले दुनिया के राजाओ को तो, जो गरीब किसानों की कमाई हुई दौलतों पर पिंडोपजीवी होते हैं, लोगों ने अपनी मूर्खता से वीर बना रखा है। ये जरी, मखमल और जेवरों से लदे हुए माँस के पुतले तो हरदम काँपते रहते हैं। इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् और बलवान् होने पर भी दुनिया के ये छोटे जार्ज बड़े कायर होते है। क्यों न हों, इनकी हुकूमत लोगों के दिलों पर नहीं होती। दुनिया के राजाओं की दौड़ लोगों के शरीर तक है। हाँ, जब कभी किसी अकबर का राज लोगों के दिलो पर होता है तब इन कायरों की बस्ती में मानो एक सच्चा वीर पैदा होता है।

एक बागी गुलाम और एक बादशाह की बातचीत हुई। यह गुलाम कैदी दिल से आजाद था। बादशाह ने कहा—"मैं तुमको अभी जान से मार डालूंगा।

तुम क्या कर सकते हो ?'' गुलाम बोला—''हाँ, मैं फांसी पर तो चढ़ जाऊँगा पर तुम्हारा तिरस्कार तब भी कर सकता हूँ।'' बस, इस गुलाम ने दुनिया के बादशाहों के बल की हद दिखला दी। बस इतने ही जोर और इतनी ही शेखी पर ये झूठे राजा शरीर को दुःख दे और पीट-पीटकर अनजान लोगों को डराते हैं, भोले लोग उनसे डरते हैं। चूँकि सब लोग शरीर को अपने जीवन का केन्द्र समझते हैं इसलिये जहाँ किसी ने उनके शरीर पर जरा जोर से हाथ लगाया नही कि वे मारे डर के अधमरे हो जाते हैं, केवल शरीर-रक्षा के निमित्त ये लोग इन राजाओं की ऊपरी मन से पूजा करते हैं, जैसे ये राजा वैसा उनका सत्कार। जिनका बल शरीर को जरा सी रस्सी से लटका कर मार देने भर ही का है, भला उनका और उन बलवान् और सच्चे राजाओं का क्या मुकाबला जिनका सिंहासन लोगों के हृदय-कमल की पंखुड़ियों पर है ? सच्चे राजा अपने प्रेम के जोर से लोगों के दिलों को सदा के लिये बाँध देते हैं। दिलों पर हुकूमत करने वाले फौज, तोप, बन्दूक आदि के बिना ही शहंशाहे-जमाना होते हैं, मंसूर ने अपनी मौज में आकर कहा-''मैं खुदा हूँ।'' दुनिया के बादशाह ने कहा—यह काफिर है। मगर मंसूर ने अपने कलाम को बन्द न किया। पत्थर मार-मार कर दुनिया ने उसके शरीर की बुरी दशा की, परन्तु उस मर्द के हर बाल से ये ही शब्द निकले-अनलहक ''अहंब्रह्मास्मि'' मैं ही ब्रह्म हूँ। मंसूर का सूली पर चढ़ना उसके लिये सिर्फ खेल था। बादशाह ने समझा कि मंसूर मारा गया।

शम्स तबरेज को भी ऐसा ही काफिर समझ कर बादशाह ने हुक्म दिया कि इसकी खाल उतार दो। शम्स ने खाल उतारी और बादशाह को, दरवाजे पर आये हुये कुत्ते की तरह भिखारी समझ कर, वह खाल खाने के लिये दे दी। देकर वह अपनी यह गजल बराबर गाता रहा—''भीख माँगने वाला तेरे दर पर आया है, ऐ शाहे दिल ! कुछ इसको दे दो।'' खाल उतार कर फैंक दी, वाह रे सत्पुरुष !

भगवान शंकर जब गुजरात की तरफ यात्रा कर रहे थे तब एक कापालिक हाथ जोड़े सामने आकर खड़ा हुआ। भगवान ने कहा—माँग, क्या माँगता है ? उसने कहा—हे भगवान ! आजकल के राजा बड़े कृपण हैं। इसलिये मैं आपके पास आया हूँ, आप अपनी कृपा से मुझे अपना सिर दान करें जिसकी भेंट चढ़ाकर मैं अपनी देवी को प्रसन्न करूँगा और अपना यज्ञ पूरा करूँगा। भगवान ने मौज में आकर कहा—अच्छा, कल यह सिर उतार कर ले जाना और काम सिद्ध कर लेना।

ऐसे दैवी वीर, रुपया, पैसा, माल, धन का दान नहीं किया करते। जब वे दान देने की इच्छा करते हैं तब अपने-आप को हवन कर देते हैं। बुद्ध महाराज ने जब एक राजा को मृग मारते देखा तब अपना शरीर आगे कर दिया जिससे

भृग बन जाय, बुद्ध का शरीर चाहे चला जाए। ऐसे लोग कभी बड़े मौकों का इन्तजार नहीं करते, छोटे मौकों को ही बड़ा बना देते हैं।

अपने-आप को हर घड़ी और हर पल महान से भी महान बनाने का नाम वीरता है। वीरता के कारनामे तो एक गौण बात है। असल वीर तो इन कारनामों को अपनी दिनचर्या में लिखते भी नहीं। पेड़ तो जमीन से रस ग्रहण करने में लगा रहता है, उसे यह खयाल ही नहीं होता कि मुझमें कितने फल या फूल लगेंगे, उसका काम तो अपने-आपको सत्य में रखना है—सत्य को अपने अन्दर कूट-कूट कर भरना है और अन्दर ही अन्दर बढ़ना है। उसे इस चिन्ता से क्या मतलब कि कौन मेरे फल खायेगा या मैंने कितने फल लोगों को दिये।

वीरता का विकास नाना प्रकार से होता है। कभी तो उसका विकास लड़ने-मरने में, खून बहाने में, तोप के सामने जान गँवाने में होता है। कभी प्रेम के-मैदान में उसका झण्डा खड़ा होता है, कभी जीवन के गूढ़ तत्व और सत्य की तलाश में बुद्ध जैसे राजा विरक्त होकर वीर हो जाते हैं। कभी किसी आदर्श पर और कभी किसी पर वीरता अपना फरहरा लहराती है। परन्तु वीरता एक प्रकार का इलहाम या दैवीप्रेरणा है। जब कभी इसका विकास हुआ, तभी एक कमाल नजर आया, एक नया जलाल पैदा हुआ, नई एक रौनक, एक नया रंग, एक नई बहार, एक नई प्रभुता संसार में छा गई। वीरता हमेशा निराली और नई होती है। नयापन भी वीरता का एक खास रंग है। वीरता की कभी नकल नहीं हो सकती, जैसे मन की प्रसन्नता कभी कोई उधार नहीं ले सकता। वीरता देश-काल के अनुसार संसार में जब कभी प्रगट हुई तभी एक नया स्वरूप लेकर आई, जिसके दर्शन करते ही सब लोग चकित हो गये—कुछ बन न पड़ा और वीरता के आगे सिर झुका दिया।

जापानी वीरता की मूर्त्ति पूजते हैं। इस मूर्त्ति का दर्शन वे चैरी के फूल की शान्त हँसी में करते हैं। क्या ही सच्ची और कौशलमयी पूजा है। वीरता सदा जोश से भरा हुआ ही उपदेश नहीं करती। वीरता कभी-कभी हृदय की कोमलता का भी दर्शन कराती है। ऐसी कोमलता देखकर सारी प्रकृति कोमल हो जाती है, ऐसी सुन्दरता देखकर लोग मोहित हो जाते हैं। जब कोमलता और सुन्दरता के रूप में यह दर्शन देती है तब चैरी के फूल से भी ज्यादा नाजुक और मनोहर होती है।

वीरों के बनाने के कारखाने कायम नहीं हो सकते। वे तो देवदार के दरख्तों की तरह जीवन के अरण्य में खुद-ब-खुद पैदा होते हैं और बिना किसी के पानी दिये, बिना किसी के दूध पिलाये, बिना किसी के हाथ लगाए, तैयार होते हैं। दुनिया के मैदान में अचानक ही सामने आकर वे खड़े हो जाते हैं, उनका सारा जीवन भीतर ही भीतर होता है, बाहर तो जवाहिरात की खानों की ऊपरी

जमीन की तरह कुछ भी दृष्टि में नहीं आता। वीर की जिन्दगी मुश्किल से कभी-कभी बाहर आती है। उसका स्वभाव तो छिपे रहने का है।

वह लाल गुदड़ियों के भीतर छिपा रहता है, कन्दराओं में, गारों में, छोटी-छोटी झोपड़ियों में बड़े-बड़े वीर महात्मा छिपे रहते हैं। पुस्तकों और अखबारों को पढ़ने से या विद्वानों के व्याख्यानों को सुनने से तो बस ड्राइंग हॉल के वीर पैदा होते हैं, उनकी वीरता अनजान लोगों से अपनी स्तुति सुनने तक खत्म हो जाती है। असली वीर तो दुनिया की बनावट और लिखावट के मखौलों के लिये नहीं जीते।

हर बार दिखावे और नाम की खातिर छाती ठोक कर आगे बढ़ना और फिर पीछे हटना पहले दर्जे की बुज़दिली है। वीर तो यह समझता है कि मनुष्य का जीवन एक जरा-सी चीज है। वह सिर्फ एक बार के लिये काफी है। मानों इस बन्दूक में एक ही गोली है, हाँ कायर पुरुष इसको बड़ा ही कीमती और कभी न टूटने वाला हथियार समझते हैं। हर घड़ी आगे बढ़कर और यह दिखाकर कि हम बड़े हैं, वे फिर पीछे इस गरज से हट जाते हैं कि उनका अनमोल जीवन किसी और अधिक बड़े काम के लिये बच जाय। बादल गरज-गरज कर ऐसे ही चले जाते हैं। परन्तु बरसने वाले बादल जरा देर में बारह इंच तक बरस जाते हैं। बाबर के सिपाहियों ने और लोगों के साथ गुरु नानक को भी बेगार में पकड़ लिया। उनके सिर पर बोझ रखा और कहा "चल"। आप चल पड़े। दौड़, धूप, बोझ, मुसीबत, बेगार में पकड़ी हुई स्त्रियों का रोना, शरीफ लोगों का दुःख, गांव का जलना, सब किस्म की दुःखदायी बातें हो रही हैं। मगर किसी को कुछ असर नहीं हुआ। गुरु नानक ने अपने साथी मर्दाना से कहा—सारंगी बजाओ, हम गाते हैं। उसी भीड़ में सारंगी बज रही है और आप गा रहे हैं। वाह री शान्ति !

अगर कोई छोटा-सा बच्चा नैपोलियन के कन्धे पर चढ़कर उसके सिर के बाल खींचे तो क्या नैपोलियन इसको अपनी बेइज्जती समझ कर उस को जमीन पर पटक देगा, जिससे लोग उसे बड़ा वीर कहें ? इस तरह सच्चे वीर, जब उनके बाल दुनिया की चिड़ियाँ नोंचती हैं, तब कुछ परवाह नहीं करते। क्योंकि उनका जीवन आस पास वालों के जीवन से निहायत ही बढ़-चढ़ कर ऊँचा और बलवान होता है। भला ऐसी बातों पर वीर कब हिलते हैं ? जब उनकी मौज आई तभी मैदान उनके हाथ है।

कायर पुरुष कहते हैं—आगे बढ़े चलो। वीर कहते हैं—पीछे हट चलो। कायर कहते हैं उठाओ तलवार। वीर कहते हैं—सिर आगे करो। वीर का जीवन प्रकृति ने अपनी शक्तियों को फिजूल खो देने के लिये नहीं बनाया है। वीर पुरुष

का शरीर कुदरत की कुल ताकतों का भण्डार है। कुदरत का यह मरकज हिल नहीं सकता। सूर्य का चक्कर हिल जाये तो हिल जाये परन्तु वीर के दिल में जो दैवी केन्द्र है, वह अचल है। कुदरत के और पदार्थों की पालिसी चाहे आगे बढ़ने की हो, अर्थात् अपने बल को नष्ट करने की हो, मगर वीरों की पॉलिसी बल को हर तरह इकट्ठा करने और बढ़ाने की होती है। वीर तो अपने अन्दर ही मार्च करते है, क्योंकि हृदयाकाश के केन्द्र में खड़े होकर वे कुल संसार को हिला सकते हैं।

रानाजी ने जहर के प्याले से मीराबाई को डराना चाहा। मगर वाह री सचाई। मीरा ने उस जहर को भी अमृत मान कर पी लिया। वह शेर और हाथी के सामने गई मगर वाह रे प्रेम! मस्त हाथी और शेर ने देवी के चरणों की धूल को अपने मस्तक पर मला और अपना रास्ता लिया। इस वास्ते वीर पुरुष आगे नहीं, पीछे जाते हैं। भीतर ध्यान करते हैं; मारते नहीं, मरते हैं।

वह वीर क्या जो टीन के बर्त्तन की तरह झट गर्म और झट ठण्डा हो जाता है। सदियों नीचे आग जलती रहे तो भी शायद ही वीर गर्म हो और हजारों वर्ष बर्फ उस पर जमती रहे, तो भी क्या मजाल जो उसकी वाणी तक ठण्डी हो।

आजकल भारतवर्ष में अखबारों की टकसाल में गढ़े हुए वीर दर्जनों मिलते हैं। जहाँ किसी ने एक दो काम किए और आगे बढ़कर छाती दिखाई वहाँ हिन्दुस्तान के सारे अखबारों ने हीरो और महात्मा की पुकार मचाई। अखबार लिखने वाले मामूली सिक्के के मनुष्य होते हैं। उनकी स्तुति और निन्दा पर क्यों मरे जाते हो? अपने जीवन को अखबारों के छोटे-छोटे पैराग्राफों के ऊपर क्यों लटका रहे हो? क्या यह सच नहीं कि हमारे आजकल के वीरों की जानें अखबारों के लेखों में हैं? जहाँ इन्होंने रंग बदला कि हमारे वीरों के रंग बदले, ओंठ सूखे और वीरता की आशाएँ टूट गईं।

प्यारे, अन्दर के केन्द्र की ओर अपनी चाल उलटो और इस दिखावटी और बनावटी जीवन की चंचलता में अपने-आप को न खो दो। वीर नहीं तो वीरों के अनुगामी हो और वीरता के काम नहीं तो धीरे-धीरे अपने अन्दर वीरता के परमाणुओं को जमा करो।

जब हम कभी वीरों का हाल सुनते हैं तब हमारे अन्दर भी वीरता की लहरें उठती हैं और वीरता का रंग चढ़ जाता है, परन्तु वह चिरस्थाई नहीं होता? उसका कारण सिर्फ यही है कि हमारे भीतर वीरता का मसाला तो होता नहीं। हम सिर्फ खयाली महल उसके दिखलाने के लिए बनाना चाहते हैं। टीन के बर्तन का स्वभाव छोड़कर अपने जीवन के केन्द्र में निवास करो और सच्चाई की चट्टान पर दृढ़ता से खड़े हो जाओ। अपनी जिन्दगी किसी और के हवाले करो ताकि

जिन्दगी के बचाने की कोशिशों में कुछ भी बना नाथा न हो। इसलिये बाहर की सतह को छोड़ के जीवन के अन्दर की तहों में घुस जाओ, तब नये रंग खुलेंगे। द्वेष और भेद दृष्टि छोड़ो, रोना छूट जायेगा, प्रेम और आनन्द से काम लो, शान्ति की वर्षा होने लगेगी और दुख दूर हो जायेंगे। जीवन के तत्त्व का अनुभव करके चुप हो जाओ, धीर और गम्भीर हो जाओगे। वीरों की, फकीरों की, पीरों की यह कूक है—हटो पीछे, अपने अन्दर जाओ, अपने आप को देखो, दुनिया और की और हो जायेगी। अपनी आत्मिक उन्नति करो।

अभ्यास-प्रश्न

1. 'सच्चे वीर पुरुष धीर, गम्भीर और आजाद होते हैं।' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. 'सत्त्व गुण के समुद्र में जिनका मन निमग्न हो गया है, वे ही महात्मा, साधु और वीर हैं।' 'सरदार पूर्णसिंह के इस कथन में सत्त्व गुण का उल्लेख किया गया है। इसमें निमग्न व्यक्तियों को लेखक ने महात्मा, साधु और वीर क्यों माना है। स्पष्ट कीजिए।
3. 'दुनिया के राजाओं की दौड़ मनुष्य के शरीर तक होती है।' उदाहरण देकर इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
4. 'वीरों के बनाने के कारखाने नहीं होते हैं। वे तो जीवन के अरण्य में देवदार के दरख्त की तरह खुद ब खुद पैदा होते हैं।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
5. 'कायर पुरुष कहते हैं—आगे बढ़े चलो। वीर पुरुष कहते हैं—पीछे हटे चलो। कायर कहते हैं—उठाओ तलवार। वीर कहते हैं—सिर आगे करो।' लेखक ने कायर तथा वीर के अन्तर को इस कथन द्वारा किस प्रकार प्रकट किया है—स्पष्ट कीजिए।
6. 'वीर तो अपने अन्दर ही मार्च करते हैं, क्योंकि हृदयाकाश के केन्द्र में खड़े होकर वे संसार को हिला देते है।' सरदार पूर्णसिंह ने वीरों के स्वभाव को इन पंक्तियों में किस प्रकार प्रकट किया है—स्पष्ट कीजिए।
7. लेखक ने टीन के बर्त्तन के समान स्वभाव को छोड़ने का आग्रह क्यों किया है ?
8. 'हटो पीछे. अपने अन्दर जाओ। अपने आप को देखो। दुनिया और की और हो जाएगी। अपनी आत्मिक उन्नति करो।' पूर्णसिंहजी का यह कथन आज की परिस्थितियों में अत्यन्त प्रेरक एवं अनुकरणीय है। इस बारे में अपने विचार लिखिए।

9. निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ स्पष्ट करते हुए अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

(1) हद दिखलाना (2) रंग चढ़ना।

10. सन्धि-विच्छेद कीजिए तथा सन्धि का नाम भी बतलाइए—

पिण्डोपजीवी, परोपकार।

11. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

मंसूर, गुरु नानक।

12. इस पाठ की विषय-वस्तु को आधार मानकर 'वीरता' विषय पर एक निबन्ध लिखिए।

13. पिण्डोपजीवी पद का सर्वाधिक शुद्ध विग्रह क्या होगा ?

(1) पिण्ड पर उपजीवी (2) पिण्ड में उपजीवी

(3) पिण्ड के लिए उपजीवी (4) पिण्ड और उपजीवी

(5) पिण्ड का उपजीवी ( )

14. 'सच्ची वीरता' पाठ का केन्द्रीय भाव कौनसा होगा ?

(1) अपनी वीरता का प्रदर्शन करना

(2) किसी अच्छे कार्य के लिए मर मिटना

(3) अपनी आत्मिक उन्नति करना

(4) स्वावलम्बी बनना

(5) अपने भीतर प्रेम और आनन्द बढ़ाना ( )

—

राघवः करुणो रसः

कुबेरनाथ राय

लेखक-परिचय।

श्री कुबेरनाथ राय हिन्दी के ललित निबन्धकारों में प्रसिद्ध हैं। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी की परम्परा में श्री राय ने इस विधा को अपनाकर महत्वपूर्ण योग-दान किया है। ये हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषाओं के विद्वान हैं। इन सभी भाषाओं पर इनका अधिकार है। इनके निबन्ध चिन्तनपरक हैं। एक ही भाव को विविध उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करने में श्री राय को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। ये परिष्कृत शब्दावली का प्रयोग करते हैं। इनके निबन्धों में व्यंग्य एवं विनोद के प्रसंग भी सहज ही आ जाते हैं। श्री राय के निबन्धों की शैली सुगठित है। ये

प्रत्येक शब्द का प्रयोग पूर्ण सार्थकता के साथ करते हैं। संस्कृत महाकाव्यों के उद्धरण इनके निबन्धों को विशेष प्राणवान बनाते हैं।

इनकी रचनाएँ जीवन के विविध आयामों को छूती हैं, अतः पाठक उन्हें सहज रुचि के साथ पढ़ते हैं। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—प्रिया नीलकण्ठी, रस-आखेट, गन्ध-मादन।

पाठ परिचय :

श्री राय ने 'राघवःकरुणो रसः' निबन्ध में आज के मनुष्य की स्थितियों का चित्रण किया है। वे कहते हैं कि आज का मनुष्य निर्वासित है। यह निर्वासन किसी का दिया हुआ नहीं है। यह अकारण का निर्वासन है। पूंजीपति देशों का यह निर्वासन भिन्न प्रकार का है। पश्चिमी यूरोप में इसका प्रकार भिन्न है। भारत में भी इस निर्वासन के दर्शन होते हैं। श्री राय ने कहा है कि यह निर्वासन व्यक्ति को समाज से अलग करता है। वह "स्व" की कोटर में बन्द होकर इस निर्वासन को भोगता है।

राम को भी अकारण ही निर्वासन मिला था। वे वन में रहकर निर्वासन भोग रहे थे किन्तु वे अपने निर्वासन की पीड़ा स्वयं ही नहीं भोग रहे थे। वे सबके साथ जीते थे तथा वनस्पति-जगत् को भी अपनी पीड़ा में शामिल करते थे। इस तरह वे 'अजनबीपन' का अनुभव नहीं करते थे। जब हम अपनी पीड़ा बांट देते हैं तो पीड़ा कम हो जाती है। राम ने धैर्यपूर्वक निर्वासन की पीड़ा को सहन किया तथा साथ रहने वालों को प्रसन्न रखने का प्रयास किया।

श्री राय यह कहना चाहते हैं कि राम के जीवन का यह भाव आज के मानव को अपने जीवन में उतारना चाहिए। 'स्व' की कोटर में बंद रहने से तो घुट-घुट कर मरने के अलावा कुछ भी मिलने वाला नहीं है। श्री पन्त ने ठीक ही कहा है—

जग पीड़ित रे अति सुख से,
जग पीड़ित रे अति दुख से।
मानव जग में बँट जाए,
सुख दुख से और दुख सुख से।

इस निबन्ध में श्री कुबेरनाथ राय ने आज के भटके हुए मानव को एक प्रेरक संदेश दिया है। इसके आधार पर सच्चे सुख तथा आनन्द की प्राप्ति सम्भव है।

□ □ □

नये साहित्य में करुण रस की सर्वाधिकतम स्थिति है : निर्वासन; नये साहित्य में निर्वासन-भाव का स्वतन्त्र विकास इस रूप में ही हो रहा है कि यह स्थायी भाव जैसा बन गया है। ऐसी हालत में एक स्वतन्त्र 'निर्वासनरस' की कल्पना कर

ली जाय, तो भी कोई हर्ज नहीं। यह मात्र साहित्यिक व्यथा नहीं है। विश्वस्तर पर आज मनुष्य इस निर्वासन व्यथा को वास्तविक रूप में भोग रहा है। यह तथ्य है। यह सही है कि इसका जो रूप अर्थ-काम के अति-सुख से उत्पीड़ित अमरीका में हैं, वही रूप त्रास और दैन्य से पीड़ित पश्चिमी यूरोप में नहीं है। रूस, चीन या तिब्बत में तो इस निर्वासन की विधा ही बिल्कुल अलग किस्म की है। पर किसी-न-किसी रूप में मनुष्य (अर्थात् उसका सजीव रूप 'व्यक्ति') सर्वत्र निर्वासन भोग रहा है। हिन्दुस्तान में यह उतने व्यापक तौर पर भले ही न हो, पर है यह जरूर। सुबूत के तौर पर शरणार्थियों, विस्थापितों, पुराने ईमानदार कांग्रेसियों, आदर्शवादी बुद्धिजीवियों, नवबोध प्राप्त विश्वविद्यालय स्तर के छात्रों, आदर्शवादी पार्टी-कर्मियों (चाहे जो पार्टी हो, या जो आदर्श हो), अल्पसंख्यक ईमानदार अफसरों आदि के हृदय में प्रवेश करके देखें, तो पता चलेगा कि सभी अपने आप परिवेश से एवं आसपास से निर्वासित अनुभव कर रहे हैं। कारण विभिन्न हैं, वस्तुस्थितियां विभिन्न हैं, पर शाप एक ही है, जो सब के शीश पर प्रेत की तरह मंडरा रहा है। इनमें भी जो निर्वासन के साथ-साथ 'अजनबीपन' के शिकार हैं, (यद्यपि अपने देश में ऐसे बहुत कम हैं) उनकी यातना दुहरी भयावह है।

यहाँ पर हम समस्या को विश्व-स्तर पर ले रहे हैं। नया मनुष्य अकारण निर्वासित है, ऐतिहासिक शक्तियों द्वारा। इस पीढ़ी का कोई अपराध नहीं। ऐसे अकारण निर्वासन का उदाहरण 'रामायण' में भी है। राम उसी तरह अकारण निर्वासित हुए थे, जैसे आज का नया मनुष्य। स्थिति दोनों की एक है। दोनों निरपराध हैं। पर परिवेश की सतही समानता के बावजूद अपने-अपने सन्दर्भ में उनकी प्रतिक्रिया समानधर्मी नहीं होती है। राम का व्यक्तित्व निर्वासन-सन्दर्भ के भीतर जैसी प्रतिक्रिया करता है, वैसा नये मनुष्य का व्यक्तित्व नहीं। यहाँ पर हम राम के व्यक्तित्व के कुछ पहलुओं की चर्चा इस निर्वासन के सन्दर्भ में रख कर प्रस्तुत कर रहे हैं।

राम के निर्वासन का चरम रूप सीताहरण के पश्चात् और लंका-अभियान के पूर्व के मध्यान्तर में मिलता है। इसमें भी 'किष्किन्धाकाण्ड' के भीतर सुग्रीव-अभिषेक के बाद माल्यवन्त-शिखर पर बिताये गए कुछ मास निर्वासन और निस्संगता की तीव्रतम स्थिति है। मन बालिवध की उत्तेजना से पीड़ित है। नूपुर और वस्त्र देख कर उन्हें अन्दाजा हो गया है कि उनका शत्रु रावण ही है। जटायु ने भी यही सूचना दी थी। अतः महाप्रतापशाली शत्रु की चिन्ता, अपने अकेलेपन और असहायता का बोध, बालि-वध की उत्तेजना, मैथिली के प्रति करुणा और अनिश्चित भविष्य की चिन्ता तो थी ही। ऊपर से वर्षाकाल आ जाने से कोई भी प्रयत्न नहीं किया जा सकता। शरद के आगमन की प्रतीक्षा करो। तब तक

निष्क्रिय बैठे रहो और कातरतावश अपना आत्मक्षय करो। इस मनः-स्थिति में ही राम का धीर-गम्भीर और करुण-श्यामल रूप दुख के अन्धकार के भीतर से फूटता है। यह रूप और यह आत्म-संघर्ष वाल्मीकि और तुलसीदास ने वर्षा-वर्णन और शरद-वर्णन के माध्यम से प्रस्फुटित किया है। वाल्मीकि के वर्णन में आत्म-संघर्ष की ही प्रधानता है। उनका वर्षा-वर्णन नायक की व्यथा और रस की सहज धीरता, उसकी कामकातरता और उसके शान्त सौन्दर्य-बोध का घोर अन्तर्द्वन्द्व प्रस्तुत करता है। ऐसा लगता है कि राम अपनी उत्तेजना को प्रकृति के शान्त सौन्दर्य-बोध में डुबो कर एक शान्त बिन्दु पाने का दुर्निवार प्रयत्न कर रहे हैं। वाल्मीकि ने यह दिखाया है कि असह्य दुख मिट नहीं पाता। इसे भोगने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं, कोई विकल्प नहीं। लीला का जन्म ही भोगने के लिए होता है। उनके शरद वर्णन में चल कर यह उत्तेजना और तीव्र हो गयी है। परन्तु तुलसीदास का बोध अलग है। उनकी उदात्त धीरता को वे शरद्‌वर्णन तक ले जाते-ले जाते इस आत्मसंघर्ष में नयी बना देते हैं और उनका मन शान्त, स्थिर और सबल हो जाता है।

क्षितिज के शिखरों पर मेघों की नील सोपान पंक्ति खड़ी है, नील अम्बर तक आरोहण के लिए। राम प्रारम्भ में ही कहते हैं : लक्ष्मण देखो—

सन्ध्या के कारण आकाश का रंग ताम्रवर्णी और पाण्डुर है। लगता है कि आकाश के हृदय में भी घाव है और भीगे बादलों की पट्टी उस पर बँधी है। सन्ध्या-चन्दन से चर्चित पाण्डुरवर्णी बादलों वाला आकाश कामातुर सा लगता है, जिसका चेहरा पीला पड़ गया है और मन्द मारुत जिसकी कामोत्तेजना का निश्वास है। तेज धूप से पीड़ित नये जल से सींची धरती से वाष्प उठ रही है, जैसे यह शोक-सन्तप्त सीता हो। —किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग 27।

राम अपने अन्तर के घाव को विश्व प्रकृति के हृदय में (बद्ध-व्रणमिवाम्बरम्) पाते हैं, और यह घाव तब और रिस उठता है, जब नील मेघ में दामिनी दमकती है। उन्हें लगता है, मानो रावण के अंक में कातर तपस्विनी वैदेही हो। वे फिर कहते हैं : 'हे सौमित्र, पर्वत के सानु पर फूले हुए कुटजों को देखो। ये मेरे शोकाभिभूत मन में काममन्दीपनार्थ पुष्पित हो रहे हैं।' इसके बाद छन्द बदल जाता है और एक से एक कोमल और संगीतमय चित्र आते हैं। पर असह्य दुख की अन्तर्धारा सारी कोमलता को भेद कर प्रतापशाली शत्रु की चिन्ता के रूप में आ जाती है और फिर शोक और कातरता का अनुष्टुप् छन्द लौट आता है। यह दुख प्रेमिका के लिए रीतिबद्ध नागर का दुख नहीं है, यहां 'तपस्विनी वैदेही' 'पवित्र मैथिली' की कातर अवस्था के प्रति करुणा अधिक है और व्यक्तिगत, निजी कामव्यथा कम। यह पवित्रता और सौन्दर्य के आहत होने पर बोध किया

गया एक विश्वव्यापी दुख है। इस दुख को राम कातर, रूमानी नायक की तरह नहीं वहन करते हैं। वे धीरता के समुद्र हैं और दुख उन्हें उद्धार की चिन्ता की ओर प्रेरित करता है। यद्यपि दुख असह्य है और उनके व्यक्तित्व का एक अंश उसे अहर्निश भोग रहा है। इस नियति से कोई मुक्ति नहीं, कोई क्षमा नहीं। कोई शान्त बिन्दु नहीं।

पर तुलसी इस यातनामय निर्वासन और आत्मसंघर्ष के बीच से नायक को शान्तबिन्दु की ओर ले गये हैं। उनके 'नीलाम्बुज श्यामल कोमल' राम के व्यक्तित्व की जड़ें अगाध धीरता के समुद्र में हैं। उन्होंने उत्तेजना और आत्मसंघर्ष से शान्तबिन्दु तक की मानसिक प्रक्रिया को मूलतः चार स्तरों में विभाजित किया है। उत्तेजना के प्रथम आघात से जब वे दीन भाव से "हे खगमृग, हे मधुकर स्रेनी" आदि कहते हैं, तो लगता है कि उनका व्यक्तित्व टूट-टूट कर बिखर जायगा। पर भीतर ही भीतर अमृत और प्राण की शक्तियाँ सक्रिय हैं। फिर बसन्त आता है। सारा वन कुसुमित हो उठता है। काम के तीरों से तरुलता क्या, सारी सृष्टि, पीड़ित और उल्लसित है। यह पीड़ा राम भी भोगते हैं, पर उनके भीतर का देवता, उनका सहज पुनीत मन, अनासक्ति के अमृत से उस यातना को सींच कर ठण्डा कर रहा है। एक ओर कामना तीव्र है, तो दूसरी ओर वैराग्य का स्वर भी सक्रिय है। जो आत्मसंघर्ष वाल्मीकि के वर्षा-वर्णन में है वह तुलसी के बसन्त-वर्णन (अरण्यकाण्ड) में है। कल्याण के कल्पवृक्ष स्वरूप नारद का प्रवेश इसी संघर्ष-भूमि में आ कर वैराग्य और अनासक्ति के वातावरण को और सबल बना देता है। फिर पम्पासर आते हैं। बालि का वध करते हैं। रावण जैसे शत्रु की चिन्ता, अनिश्चित भविष्य तथा निष्क्रिय स्थिति की पीड़ा के सन्दर्भ में वर्षा आती है, पर उत्तेजना का पर्याप्त अवसर होने पर भी मन सहज धीरज की स्थिति में है। 'प्रियाहीन डरपत मन मोरा' कह कर अन्तर की सतत जागरूक व्यथा का एक संकेत मात्र कर देते हैं। अब वे प्रथम अवसर की तरह कातर और कमजोर नहीं हैं। मयूर-नृत्य और मेघ-गर्जन से प्रिया की याद आती है, पर वे उत्तेजना को प्रकृति के शान्त सतोगुणी सौन्दर्य में लीन कर देते हैं। सारी मानसिक भूमि अचानक हरी-भरी और नीलरमणीय हो उठती है। दुख और उत्तेजना शान्त सौन्दर्य में स्नान करके शुद्ध हो चुके हैं। प्रकृति के कोमल चित्रों से सरल, सादे नागरिक-विदग्धताहीन, सतो-गुणी संस्कार जन्म ले रहे हैं। शरद तक आते-आते मन पूरा प्रकृतिस्थ है। शरद इस समूची प्रक्रिया की अन्तिम कड़ी है, जहाँ मन पूर्ण शान्त है, जहाँ धीरता जयी हो गई है। वे जानते हैं, शोक का समुद्र विस्तीर्ण है। पर अब वे शान्त उत्तेजना-हीन मन से उद्धार की चिन्ता करने में समर्थ हैं। वाल्मीकि का चित्र मानवीयता

की दृष्टि से तुलसी से अधिक वास्तविक लगता है। पर निर्वासन के भीतर 'धीर गम्भीर स्निग्ध श्यामल' रूप तुलसी में अधिक सशक्त ढंग से अभिव्यक्त होता है। सहज सौन्दर्यबोध और सतोगुणी मन की यह विजय 'धीर-करुण' रस के प्रतीक राघव के अधिक उपयुक्त है। यद्यपि दोनों चित्र मानवीय हैं, दोनों सहज हैं, पर एक है 'मात्र यथार्थ' और दूसरा है 'अतिमापरक (ट्रांसेण्डेण्टल) यथार्थ'। जीवन में दोनों का अस्तित्व है और दोनों वास्तविक हैं। यह और बात है कि एक की मिसालें ज्यादा मिलती हैं और दूसरे की कम। पर महिमा का जन्म दूसरे से ही होता है। राम मनुष्य की इसी महिमा के प्रतीक हैं।

नये मनुष्य के निर्वासन में शान्त सौन्दर्यबोध के इसी अमृत-स्पर्श का अभाव है। ऐतिहासिक शक्तियों ने (नाजीवाद, तानाशाही, महायुद्ध और विभाजन) ने उसके ऊपर जितना निर्वासन थोपा है, उससे ज्यादा उसने स्वयं आगे बढ़ कर वरण कर लिया है। उसका 'स्व' जिस ऋत का पान करके जी रहा है, उसी ऋत की धुरी (अर्थात् मानवीय मूल्य जिसमें "सौन्दर्य" भी एक है) उसने छिन्न-भिन्न कर डाली है। फलतः कई प्रकार के मूल्यों के प्रति एक मानसिक अवरोध (इनहिबीशन) की रचना उसने कर ली है। शान्त सौन्दर्यबोध को 'वर्ड्सवर्थियन' या 'रूमानी' कह कर तिरस्कृत करना आज का आम कायदा हो गया है। रामायणकार ने वर्षा और शरद का वर्णन केवल महाकाव्य की परिभाषासम्मत परिपाटी के पालन के लिए नहीं किया है। रामायणकार यही दिखाना चाहता है कि शान्त सौन्दर्यबोध से निर्वासन का विष कटता है। परिपाटी पालन के लिए तो अयोध्या काण्ड में या सीताहरण के पूर्व भी वर्षा-वर्णन दिया जा सकता है। पर वाल्मीकि या तुलसीदास ने उपर्युक्त कारण से ही वर्षा वर्णन को निर्वासन की तीव्रतम अवस्था के सन्दर्भ में रखा है।

निर्वासन की इस स्थिति में, आत्मक्षय और कुण्ठा से राम की रक्षा में उनके स्वभाव का एक दूसरा दिक् भी है, जिसका महत्व इस सौन्दर्यबोध से अधिक है। सौन्दर्यबोध तो अवसर-जात निदान है। स्थायी निदान है अनासक्ति या 'स्व' के प्रति तटस्थता। राम किसी मोह में बँधे नहीं हैं। भरत और लक्ष्मण उनकी दोनों आँखों के तारे हैं। मैथिली उनके हृदय की सहज साँस है। पर इतना होते हुए भी जब चरम बिन्दु आता है तो वे घोर अनासक्त हो जाते हैं, और किसी का भी त्याग कर सकते हैं। चरम बिन्दु पर उपस्थित होने पर उनके मन में न तो काम की उत्तेजना है और न क्रोध की। वे अपने आप को ऋत चक्र के साथ एकाकार मानने लगते हैं। इसी से उन्हें दर्द नहीं होता, मनस्ताप नहीं होता, आत्मक्षय नहीं होता। निर्वासन के नागदन्त विष-हीन हो जाते हैं। उनमें सहज प्रेम है, पर आसक्ति नहीं। सहज प्रेम आत्मा का अमृत रस है, पर आसक्ति आत्मा

का बन्धन है। वे 'रोमियो' या 'दुष्यन्त' नहीं। सीता को अग्नि-परीक्षा के अवसर पर स्पष्ट बता देते हैं—'मैथिली, यह युद्ध मैंने तुम्हारे प्रति आसक्ति या कामना से नहीं किया। ऐसा मुझे 'करना' था अतः मैंने किया।, रावण का वध वे व्यक्तिगत रोष के कारण या पत्नी के उद्धार के लिए नहीं करते हैं। पत्नी-उद्धार तो निमित्त मात्र था। वास्तविक उद्देश्य था, ऋत चक्र की बिगड़ी गति को ठीक करना, उस की दिशा को ठीक करना। यदि 'रामायण' पत्नी-हरण और उद्धार का काव्य मात्र है तो इसका विश्वव्यापी मूल्य क्या रह गया? यह व्यक्तिगत ट्रेजेडी और व्यक्तिगत समाधान के स्तर की चीज नहीं। यदि प्रिया मैथिली के प्रति आसक्ति ही इस युद्ध का कारण रहती, तो इतनी निर्विकारता से सारी व्यक्तिगत व्यथा को दबा कर मैथिली का दुबारा वे त्याग नहीं कर सकते थे। तथ्य तो यह है कि राम ऋत-चक्र से प्रतिबद्ध थे और यह प्रतिबद्धता जैसा आदेश देती गयी, वैसा वे स्वनिरपेक्ष ढंग से, घोर अनासक्ति के साथ करते गये। हमारी लाभ-हानि वाली सांसारिक युक्ति-युक्तता के अनुसार वे कार्य न्याय हों या अन्याय, पर उनका पाप राम को स्पर्श नहीं कर पाता, क्योंकि वे सारे कार्य बिना काम, क्रोध, राग, मोह के, अनासक्त ढंग से किये गये हैं। बालि का वध उन्होंने अकारण ही किया। पर इसका उन्हें जरा भी 'मनस्ताप' नहीं हुआ ('न मे तत्र मनस्तापो न मन्यु हरिपुंगव ') यह क्यों? भारत के बूढ़े कूटनीतिज्ञ राजगोपालाचारी का उत्तर है: 'यह राजनीतिक आवश्यकता थी, यह एक अनिवार्यता थी।' पर उनके जैसे शील और करुणा के समुद्र को किसी का अकारण वध करने पर मनस्ताप न हो, यह असंभव है। पर तथ्य है कि उन्हें मनस्ताप नहीं हुआ। क्योंकि क्रोध या रोष की प्रेरणा से उन्होंने मारा नहीं था। उन्होंने वाल्मीकि के अनुसार, कहा है—'हे वीर, वानर-श्रेष्ठ, इस समय धरती के सम्राट भरत हैं, उनके द्वारा स्थापित और परिचालित धर्मचक्र के विपरीत तुम कार्य कर रहे थे। अतः मेरा कर्त्तव्य था कि उनके विधान में भिन्न मर्यादा का निग्रह करूं। ('मैंने किसी व्यक्तिगत कारण से तुम्हें नहीं मारा है।') ऐसी घोर अनासक्ति, ऐसी घोर निर्विकारता एक मात्र 'ईश्वर' में या 'ऋत-चक्र' में ही प्राप्त हो सकती है। इसी निर्विकारता, शुद्धता और इसी पाप-मुक्त मन के कारण राम को लोग ईश्वर मानते हैं, और कोई कारण नहीं। राम कर्म करते भी जाते हैं, पर न केवल 'कर्मफल' के प्रति बल्कि 'कर्म' के प्रति भी निरासक्त रहते हैं। ऋत-चक्र का जो सूत्रधार होगा, वही इतने कठोर अनुशासित ढंग से तटस्थ रह सकेगा, दूसरा नहीं।

राम मनुष्य हैं। पर मनुष्यता का वरण उन्होंने उसी सीमा तक किया है, जहाँ तक 'शील' और 'करुणा' का सम्बन्ध है। 'शील' और 'करुणा' उनके व्यक्तित्व के अन्य दिक् हैं, जो मनुष्यतामुखी हैं। पर उनकी 'मन' से तटस्थता का

अनासक्ति ईश्वरीयतामुखी है। राम के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का चरित्र वाल्मीकि से अधिक परिष्कृत ढंग से तुलसीदास में मिलता है। बालि का वध उन्होंने ऋत की रक्षा के लिये किया। पर जरा सी कोमल वाणी सुनने पर (प्रभु अजहूँ मैं पातकी अन्त काल गति तोरि) उनकी मनुष्यता, उनकी निर्मम तटस्थता को दबा कर उभर आती है और वे विगलित हो जाते हैं। उस मरणोन्मुख योद्धा के शीश को सहला कर कहते हैं, 'अचल करौं तनु, राखहु प्राना।" यह है उनका करुणामय रूप। 'धीर गंभीर' के साथ-साथ 'स्निग्ध, करुण, श्यामल'। यह उनके व्यक्तित्व की अद्भुत विशेषता है। पर निर्वासन की समस्या के सन्दर्भ में हमारा तात्पर्य इस स्थल पर उनके व्यक्तित्व की पूर्वोक्त दिक् 'अनासक्ति' या 'स्व' से तटस्थता से ही है।

इसके विपरीत आज के नये मनुष्य ने अपने आप को 'स्व' की कोटर में बन्द कर लिया है। वह धुरीहीन है। उसकी प्रतिबद्धता किसी से नहीं है। देश, राष्ट्र, समाज, परिवार, मानवीय भाव (प्रेम, करुणा, दया, अभिमान आदि) आदि से वह कट कर अलग हो कर जीना चाहता है। वह स्वयं को संकुचित कर के 'स्व' के भीतर कर के, चरम निर्वासन को रस पूर्वक भोगने की सोचता है। पर राम का जो निर्वासन हुआ था, उसे 'वनवास' कहते हैं। मुक्त नील आकाश तले, रम्य दारुण वन में, छह ऋतुओं की हवाओं के परिवेश में उन्हें निर्वासन भोगने को कहा गया था—'स्व' को कोटर में नहीं। दोनों स्थितियों में सतही समानता है, जिसे हमने प्रारम्भ में स्थितिगत समानता कहा है। पर दोनों में मौलिक अन्तर स्पष्ट है।

फल होता है कि राम निर्वासन तो भोगते हैं, पर 'अजनबीपन' की यातना उन्हें नहीं भोगनी पड़ती। मेरे एक मित्र ने एक बार सवाल उठाया, 'राम और नये मनुष्य—दोनों पर अकारण निर्वासन लादा गया। पर क्या कारण है कि राम ने निर्वासन में रचना की, जब कि आज का आदमी केवल आत्मक्षय करता है ?' उत्तर निर्वासन की दोनों स्थितियों के उक्त मौलिक अन्तर में है। यह सही है कि रचना के लिए, सृष्टि के लिए, अकेलापन आवश्यक है। प्रत्येक विधाता अकेले-अकेले सृजन का कष्ट भोगता है। पर अकेलापन और चीज है, अजनबीपन और। राम की रचना—शक्ति अजनबीपन के कारण कुण्ठित नहीं हुई। उनसे कोई अजनबी नहीं। निषाद, रास्ते के कोल-भील, खग-मृग, सरिता-सर, घाट-वाट, नर-वानर उनसे सभी की पहचान है। वे बे-पहचान से भी पहचान करते हैं, प्रीति करते हैं और ऐसी प्रीति कि "कीन्ह प्रीति कुछ बीच न राखा।" निशिचर कामरूप होता है। स्वभाव से मायावी होता है। पर तो भी कोई हर्ज नहीं, वह भी अपना है। और यदि "भेद लेन पठवा दशशीशा। तबहुँ नहीं कछु हानि

वर्षीशा।' पर इतना होते हुए भी वे अकेले हैं, एकदम अकेले। उस चरम बिन्दु पर लक्ष्मण भी उनके साथ नहीं। यह अकेलापन जाने-अनजाने लोगों के बीच, पद्मपत्रमिवांभसा—वाला अकेलापन है। निर्वासन या अकेलापन मूलतः शाप की स्थिति नहीं। यह शाप की स्थिति तब हो जाती है, जब इसमें अजनबीपन भी आकर जुड़ जाये। जब निर्वासन का अर्थ रचनाकार का 'नित्य अकेलापन' हो तो वह शाप की स्थिति नहीं है। पर जब निर्वासन का अर्थ विश्व से, मनुष्य से, सौन्दर्य से अपने आप से 'अजनबीपन' हो तो यह अवश्य ही शाप की स्थिति है। निर्वासन की ऐसी ही स्थिति को मैं हेय मानता हूँ।

राम का जीवन एक ट्रेजेडी है। किसी भी बड़ी महिमा की अवतारणा के लिए, किसी भी महासत्य की स्थापना के लिए, ट्रेजेडी की आवश्यकता होती है। ये महासत्य सिद्धि के पूर्व बलि मांगते हैं, इनका अवतरण विश्व के लिए मंगलमय होता है, पर जिसके माथे ये उतरते हैं, उसको तो भोगना ही पड़ता है। राम को प्रारम्भ मे वन में निर्वासन मिला, बाद में राजदरबार की छोटी सीमा में ही निर्वासन भोगना पड़ा। सीता मिली, फिर उसे त्याग देना पड़ा। और एक लम्बे काल तक, कम-से-कम लव-कुश के बारह-चौदह वर्ष के हो जाने तक, शासन इसी निर्मम निर्वासन की स्थिति में चलाना पड़ा। राम-राज्य की सारी मर्यादाओं के साथ। वरण का पथ, रचना का पथ, सृष्टि का पथ, सत्य का पथ, महिमा का पथ सदा निर्जन-निस्संग होता है। उस पर नायक अकेले चलता है। साथ-साथ अदृश्य रूप में ऋत चक्र उसका सहचर होता है। राम का समस्त जीवन इसी महासत्य की व्याख्या है। महाभारत के अन्तिम पर्व 'स्वर्गारोहण' में यही बात प्रतीक रूप में प्रस्तुत की गयी है। स्वर्गशिखर पर आरोहण अकेले ही हो सकता है। श्वानरूप धर्म ही उस चरम बिन्दु तक साथ दे सकता है, दूसरा नहीं।

राम का जीवन साक्षात् करुणा रस है। वे ईश्वर की तरह अनासक्त, तटस्थ और महिमामय हैं, तो मनुष्य की तरह 'धीर, वीर, गभीर' हैं, 'स्निग्ध, श्यामल, करुण' हैं।' जब मैं ऐसा सोचता हूँ तो मेरे मन के अन्धकार को चीरती हुई एक छवि हठात् उगती है और मेरे अन्तर में धीरे-धीरे नील पद्म की तरह प्रस्फुटित होती है। उस नीलोत्पल के कोमल स्पर्श से मेरा अस्तित्व विगलित होकर फिर वायवीय हो जाता है और हल्का-हल्का सौरभ बन कर मनोरम पम्पासर के धीर समीरण में लीन हो जाता है। तब राम के द्वारा भोगी गयी सारी व्यथा एवं उनके जीवन की सम्पूर्ण करुणा का मैं सहभोगी साक्षी बन जाता हूँ और उस क्षण भर की लघु अवधि में लगता है कि मैं भी देवता ही हूँ।

—'गन्धमादन' से

अभ्यास-प्रश्न

1. "विश्व स्तर पर आज मनुष्य इस निर्वासन व्यथा को वास्तविक रूप में भोग रहा है।" इस कथन के सम्बन्ध में अपने विचार लिखिए।
2. "राम उसी तरह अकारण निर्वासित हुए थे जैसे आज का नया मनुष्य" लेखक ने राम के निर्वासन को नवीन मनुष्य के निर्वासन के समान क्यों बतलाया है ?
3. "राम के निर्वासन का चरम रूप सीताहरण के पश्चात् तथा लंकाअभियान के पूर्व के मध्यान्तर में मिलता है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
4. "तुलसी के नीलाम्बुज कोमल राम के व्यक्तित्व की जड़ें अगाध-धीरता के समुद्र में हैं।" श्री कुबेरनाथ राय के इस कथन पर अपने विचार लिखिए।
5. "राम ने मनुष्यता का वरण उसी सीमा तक किया है जहाँ तक शील और करुणा का सम्बन्ध है।" श्री राय के इस कथन की युक्तियुक्त व्याख्या कीजिए।
6. "आज के मनुष्य ने अपने आप को 'स्व' की कोटर में बन्द कर लिया है।" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ? अपने विचार लिखिए।
7. "राम निर्वासन तो भोगते हैं पर अजनबीपन की व्यथा उन्हें नहीं भोगनी पड़ती।" राम तथा आधुनिक मनुष्य के निर्वासन में लेखक ने कौनसी असमानता बतलाई है ? अपने विचार लिखिए।
8. श्री कुबेरनाथ राय ने राम के जीवन को साक्षात् करुणा रस किस अधार पर कहा है—युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।
9. 'त्व' प्रत्यय के योग से बनने वाले पाँच शब्द लिखिए।
10. निम्नलिखित शब्दों के अर्थ लिखिए तथा वाक्यों में प्रयुक्त कीजिए—
    उत्पीड़ित, विस्थापित, निष्क्रिय, प्रतिबद्धता।
11. निम्नलिखित में जिस शब्द का अर्थ अन्य सबसे भिन्न है उसे पहचानिये—
    (1) निर्वासन (2) देश निकाला
    (3) जिला वतन (4) निर्वसन ( )
12. निम्नलिखित शब्दों में एक ऐसा शब्द ढूंढकर निकालिए जिसका विग्रह अन्य सबसे भिन्न हो—
    (1) कामातुर (2) काम व्यथा
    (3) कामावेग (4) कामातुरता ( )

पत्र : इन्टेलेक्चुअल भैया के नाम परम्परा जीजी का

विद्यानिवास मिश्र

लेखक-परिचय :

श्री विद्यानिवास मिश्र का जन्म सन् 1926 ई. में हुआ। आप भाषा-विज्ञान के ज्ञाता के रूप में देश-विदेश में प्रसिद्ध हैं। आप एक सशक्त साहित्यकार हैं। आपकी रचनाओं में परम्पराओं की रक्षा का स्वर उभरा है, किन्तु वे अन्ध परम्पराओं के समर्थक नहीं हैं। लोक-संस्कृति के प्रति आपकी सहज आस्था है। इस आस्था के दर्शन हम आपकी रचनाओं में कर सकते हैं। आप विदेश से आने वाले प्रेरक स्वर का सम्मान करते हैं।

आपके लेखन में ज्ञान-विज्ञान इतिहास-पुराण और जीवन की व्यापक परिधियों का स्पर्श मिलता है। आपकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है। उसमें भोजपुरी का सहज प्रयोग पाठक को आकृष्ट करता है।

आपने भाषा-विज्ञान के नवीन आयामों पर गहन चिन्तन किया है। रीति-विज्ञान तथा शैली-विज्ञान पर आपने उपयोगी साहित्य लिखा है। एक सृजनशील साहित्यकार के रूप में आपको कई साहित्यिक संस्थाओं ने सम्मानित किया है। आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं :- छितवन की छाँह, तुम चन्दन हम पानी, आँगन का पंछी, बनजारा मन, भोर का आवाहन (निबन्ध संग्रह) रीति-विज्ञान, हिन्दी शब्द सम्पदा (समालोचना)

पाठ-परिचय :

इस पत्र में बुद्धिवादी भैया को परम्परा जीजी का भावमय सन्देश है। आधुनिकता के रंग में रंगा हुआ भैया सलोनी पूनम के दिन राखी बंधवाने नहीं पहुंचता है। जीजी अपने भैया को राखी के धागों का महत्व समझा रही है। वह भाई को गाँव की नदी और पहाड़ी की याद दिलाती है।

बहन अनेक उदाहरण देकर यह बतलाने का प्रयास कर रही है कि परम्परा की अवहेलना करना भूल है। आधुनिकता की जड़ें परम्परा में हैं। वह कहती है "यह मानना ठीक नहीं है कि आधुनिकता केवल बिजली के लट्टुओं से सजी बन्दनवार के नीचे से ही प्रवेश कर सकती है। यान्त्रिकता तथा आधुनिकता को एक मानना भूल है।"

बहन पीड़ा के साथ कहती है "भैया तोड़ने का खिलवाड़ क्यों करते हो? क्या जोड़ने के लिए संसार में कुछ नहीं रह गया?"

पत्र के अन्त में बहन अत्यन्त पीड़ा के साथ लिखती है "मैं अकेली असहाय नहीं हूँ। 'सबदों के सुन्नमहल' में मेरे वे रहते हैं। उनमें लीन होकर ही नया जन्म धारण करती रहती हूँ।"

बहन ने कबीर तथा मीरा के अमर संदेश को जीवन का आधार बना लिया है। इसीलिए वह निराकांक्ष है। वह किसी से कुछ भी नहीं चाहती है। वह यह चाहती है कि उसका प्यारा भाई आधुनिकता की चकाचौंध में परम्परा का संदेश नहीं भूले।

यह पत्र आधुनिकता को सब कुछ मानने वाले भाइयों को एक प्रेरक संदेश दे रहा है। पत्र की भाषा सरल एवं भावमयी है। भोजपुरी का सहज प्रयोग पत्र को जीवन्त बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है।

□ □ □

सलोनी पूनो,
अनाम गाँव

इंटेलेक्चुअल भैया,

राखी का दिन बीत गया। तुम्हें राखी बंधवाने की फ़ुरसत न मिली। अच्छा ही किया, राह पर आजकल बड़ी रपटन है। जब से नए-नए गाँवरक्षक बाँध बने हैं, शहर से गाँव-गाँव को जोड़ने वाली पुलियाविहीन ऊँची-ऊँची सड़कें बनी हैं, तब से बाढ़ हर साल और बड़े नाटकीय ढंग से इस पुराने डीह से टकराने लगी है। गाँव के पश्चिम की टौरिया, जहाँ से चाँद जरा पास दीखता था, नदी की 'आँकी बाँकी रेखा' हर साँझ सिंदूर से भर उठती थी, अब पश्चिम से कटने लगी है। पूरब से चढ़ने का रास्ता तो पहले से ही विषम था, पश्चिम वाली राह ही कम ढालू थी, सो उस टौरिए पर अब कभी-कभी ही गीत गूँजते हैं, कभी-कभी ही दीया जलता है, कभी-कभी ही कड़ाही चढ़ती है और धुआँ टौरिया की ऊँचाई बढ़ा देता है। मैं साँझ की गई-गई, अभी-अभी वहीं से लौटी हूँ, चाँद जब सिर के ऊपर बोझ बन गया, तब उतर आई। बादल नहीं थे, शायद इसीलिए चाँद कुछ अजनबी-सा लगता था तुम मेरे चन्दामल भैया, तुम भी क्या इस चन्दा की तरह अजनबी होना चाहते हो?

तुम नहीं आए, इसका दुःख नहीं है। यह तो कुछ सालों से देख रही हूँ कि राखी तुम ऐसे बंधवाते हो जैसे कि वह गया के पंडों का बन्धन-सूत्र हो दण्ड वसूलने के लिए। पर पारसाल भैयादूज पर तुम अप्रत्याशित रूप से सोच्छ्वास तिलक कराने पहुँच गए, उस दिन तुम्हारा भावोच्छल कंठ इस दुलारी बहन से असीस पर असीस माँग रहा था, उससे एक दुराशा जगी कि तुम्हारा भायप लौट आया। दुःख इसी का है कि वह लौट क्यों आया! तुम बहन के स्नेहाशिष का कवच चाहते थे, क्योंकि तुम्हारे शस्त्र कुंठित हो गए थे, अस्त्र तुम्हारे हाथ से गिरने लगा था। तुम आत्मविश्वास की पगडंडी पर चढ़ते-चढ़ते उस कगार पर पहुँच गए थे, जहाँ पाँव रखने की जगह तक नहीं रह गई थी। तब तुम लौटे थे हारे-थके,

'भय को दिग्विजय' का रूप देने का संकल्प लिए। मैं तुम्हारी कांता होती तो तुम्हें लौटा देती, पर मैं ठहरी बहन, मैं भीग गई तुम्हारे आर्द्र स्वर से, मैंने तुम्हें तिलक किया। तुम चले गए, तब से इस पूनो की बाट जोह रही थी, तुम राखी बँधवाने उसी भीने भाव से आओगे। पर तुम नहीं आए। तुम्हारी उपेक्षा सह्य थी, तुम्हें सात कदम रखने वाली सहचरी प्रगति से लगाव है, मेरी आंखें जुड़ा जाती हैं, तुम पीछे लौटकर बहन के द्वार के बंदनवार नहीं देख सकते हो, यह भी सहर्ष स्वीकार है, पर तुमने यह क्या किया ? अरसे के बाद बहन को उसके औप-चारिक अनुष्ठान के लिए क्यों विवश किया, क्यों अनुष्ठान का नया अंकुर अपनी क्षण-छलकित भावुकता से सींच-सींचकर रोप गए ?

भैया, सच कहती हूँ कि मेरी मंगल कामना तुम्हारे स्नेह की प्रत्याशा से नहीं है, तुम मुझसे उम्र में लहुरे हो, तुम मेरी उम्र लेकर जियो। मेरा पुण्य लेकर आगे बढ़ो। मेरा स्नेह तुम्हारे पथ का कंटक नहीं बनना चाहता। वह तुम्हारी पगधूलि सींचना चाहता है ताकि तुम्हारी पीठ पर धूल न लगे। तुम्हारा भय अकारण है। आधुनिकता तुम्हारे आगे नहीं है, वह तुम्हारी बगल में है पर तुम आगे देख रहे हो। दाएँ-बाएँ तुम देखना नहीं चाहते, दाएँ-बाएँ से बचना चाहते हो और पीछे देखने से शरमाते हो। मेरे भैया, आधुनिकता दाएँ-बाएँ का अपरिहार्य द्वैध है। वह द्विभक्त प्रतिभा है। वह श्री हर्ष पंडित के शब्दों में 'द्विकालबद्ध चिकुर-पाश' है।

जानती हूँ, तुम्हें यह सीधी-सादी भाषा पसन्द नहीं है। किस्सागोई से तुम्हें चिढ़ होने लगी है। (पहले तो इन किस्सों के बिना तुम्हें नींद न आती थी) और अब तुम शब्दों की छटपटाहट देखकर खुश होते हो, पर मैं तुम्हारी मुंहबोली जीजी हूँ, माफ कर देना। न यह समझना कि तुम्हारे ऊपर कोई कृपा कर रही हूँ, न यह कि तुम्हारा मखौल उड़ा रही हूँ। मेरे तुम बीरन हो, तुम्हारे ऊपर मुझे अभिमान है, तुम्हारी जय की आकांक्षा मैं अपने स्वार्थवश करती हूँ, तुम्हारी संतान-वृद्धि होगी तो मुझे नेग-न्योछावर मिलेगा, मैं भर आँगन नाचूँगी। मैं इतनी ओछी नही हूँ कि तुम जिस अधनीली रोशनी में नहाए बैठे हो उससे रश्क करूँ। मैं इतनी ढीठ भी नहीं रही कि तुम्हारे रोशन कमरे के बरामदे में आए हुए संक्षिप्त प्रकाश में हिस्सा मांगूँ। इतनी दंभी नहीं हूँ कि तुम्हें अपने आशिष की सींक पर दूर सेतु पर रातों-रात पहुंचा दूँ। मैं अपनी सीमा जानती हूँ, वह सीमा है तुम्हारे स्नेह का उन्मेष। उस स्नेह की परिधि के बाहर मेरी लौ नहीं पहुंचती। इसलिए भैया, नाराज न होना, यह तुम्हारी दुखती रग मैं नही छू रही हूँ। यह अपनी ही रग छू रही हूँ। ठीक कहूँ तो सुई धसा-धंसाकर संचेत्यता की परीक्षा ले रही हूँ। यह भटकाव तुम्हारा नही है, मेरा है। इंटलेक्चुअल, तुम्हे मैंने कहा

अपने को कुरेदने के लिए। सारी जिंदगी मैंने शुभ्रता की आराधना की, शुभ्रता का परिधान पहना, शुभ्रता के लिए अनुष्टान किए। मेरा भैया, शुभ्र वर्चस् से दीप्त बने, प्रखर विवेक से निखरे, और मेरे पालतू हंस की शुभ्रता को लजाए। तुम वैसे ही बन पाए, इंटलेक्चुअल हो गए, यह मेरा दोष है। मेरी बात का अब तो बुरा न मानोगे ?

भैया, तुमने कैसे समझा कि आधुनिकता केवल बिजली के लट्टुओं से सजी बंदनवार के नीचे ही प्रवेश कर सकती है ? तुमने कैसे यह मान लिया कि वह केवल मिल के भोंपू की पुकार पर ही आँखें खोल सकती है ? तुमने क्यों यह भ्रम पाल रखा है कि वह हाथ में सैंडल उठाकर इस कीचकांदो में बच-बच कर चल ही नहीं सकती ? क्या अब तक तुम यांत्रिकता और आधुनिकता को एक ही जान रहे हो ? तुमने अब अपनी सहजता इसीलिए न खो दी कि आधुनिकता की भूमिका अदा करने वाली यांत्रिकता को ही अपना दिल दे डाला। तुम इसीलिए न हीनता के शिकार हुए कि प्रकाश की जादूगरी से आलोकित चेहरे को असली चेहरा मान बैठे। तुम क्षमाप्रार्थी बने, क्योंकि तुम्हें लगा, यही शिष्टता की कुहनियों के आघात का प्रतिकार करने का परम साधन है। मैंने सुना है कि तुम, राह चलते दो दूसरे आदमी परस्पर टकराते हैं तब भी आदतन कह पड़ते हो "क्षमा करें" (एक्सक्यूज मी)। तुम प्रकाश के इजारेदारों से क्यों इतने त्रस्त हो ? प्रकाश उत्पन्न नहीं होता भैया, अभिव्यक्त होता है और दूसरों को जितना प्रकाशित करता है, उतना ही अपने को। विकीर्ण प्रकाश के तुम अभ्यस्त हो, इसीलिए तुम दिन को प्रकाश का विद्रूप मानते हो। मुझसे चूड़ी वाली उस दिन हँस-हँस कर कह रही थी कि बबुआजी फूटी चूड़ियों, सिरकटी मूर्त्तियों और लंगड़ी कुरसियों से घर सजाने में लगे हैं। मैंने उसे डांटा तो बोली कि बबुआजी होनी-अनहोनी की जाने कैसी-कैसी बातें कर रहे थे। मैं समझ गई, तुम अस्तित्व का देवता जगा रहे हो और मैं भाव के पीछे घुली जा रही हूँ। पर भैया, यह विघटन की विवशता क्यों ?

भैया, तोड़ने का खिलवाड़ क्यों करते हो ? क्या जोड़ने के लिए संसार में कुछ रह नहीं गया ? मैं नही कहती कि राह की ठीकरी हटाओ, पर एक-एक ठीकरी को फोड़ने बैठोगे तो राह कैसे चलोगे ? मैं यह भी नही माँगती कि तुम मेरी सुधि लेने के लिए पीछे लौटो, पर इतनी भिक्षा जरूर माँगती हूँ कि मुझसे अपने को बराबर विच्छिन्न करने की जो दमभर कोशिश कर रहे हो, उससे मैं उलझे काँटे की तरह तुम्हें सालती हूँगी, सो तुम एक बार में मुझे खंडित करो और भूल जाओ पर क्षण-क्षण मेरे कारण चुभन के लिए शिकार न बनो, तुम न टूटो।

घर में इस साल बड़ी सीलन हो गई है, दीमक (डिग्रीधारी दीमक) पोथी की-पोथी चाट गए, प्रत्यक्षर-पारायण कर लिया, बस इनी-गिनी-किताबें बच रही हैं, तुम्हारी अंग्रेजी वाली प्राइमर साबुत बची है, तुम्हें तो याद नहीं होगा, पर पैसे चुराकर मैंने तुम्हारे लिए यह प्राइमर खरीदी थी। तुम ए-बी-सी तक जाते-जाते कहने लगे थे कि "जीजी, तुम जानती हो—आर-ए-टी रैट, माने क्या होता है, हा-हा-हा....तुम नहीं बतला सकीं।" रामचरितमानस के बड़े छापे वाली प्रति का तो सिर्फ बालकांड बच रहा है। हां, किस्सा तोता-मैना जाने कैसे बच गया ?—पर जाने दो, तुम्हारे लिए आकर्षण की चीज बस एक रह गई है, द्राक्षासव की ओट में भभकायी हुई अंगूरी। मैं मिलूँ, न मिलूँ, तुम जिस भंडारघर में जाकर आँख-मिचौनी खेलते समय लुकते थे, वहीं दक्खिन-पच्छिम कोने में उसे गाड़कर रखा है, कौन जाने तुम अपनी दीदी का गम उसी में गलत कर पाओ। हाँ मेरे ज्ञान-ग्रंथिल भाई, कहीं आडिपस ग्रंथि के तो शिकार नहीं हो गए ? तुम्हें बतला दूँ मैं अकेली असहाय नहीं हूँ 'सबदों' के 'सुन्न महल' में सूली के ऊपर मेरे 'वे' रहते हैं। उनमें लीन हो-होकर ही नया जन्म धारण करती हूँ। सो भैया, आश्वस्त होओ, स्वस्थ होओ, अविभक्त होओ, इति।

तुम्हारी निराकांक्ष 'जीजी'
परंपरा
(भोर का आवाहन से)

शब्दार्थ :

इन्टेलेक्चुअल — बुद्धिवादी
इजारेदार — ठेकेदार
किस्सागोई — कथा-कथन
टौरिया — छोटी पहाड़ी, टीला
लहुरे — छोटे
सचेत्यता — चेतना
सलोनी पूनो — सावन मास की पूर्णिमा

टिप्पणियाँ :

आडिपस ग्रंथि — माता के प्रति आसक्ति की भावना
सबद, सुन्न महल — कबीर की वाणी "सबद" नाम से प्रसिद्ध है। "सबद" में सुन्न महल का उल्लेख है। परमात्मा से एकाकार होने के बाद साधक शून्य महल में प्रवेश करता है। परम्परा रूपी बहन अकेली नहीं है। वह कबीर जैसे साधकों की वाणी से नवजीवन प्राप्त करती रहती है।

ज्ञान-ग्रंथित — कोरे ज्ञान के पीछे पड़कर व्यावहारिकता से दूर हटने वाला।

सूली के ऊपर वे — मीरां की एक पंक्ति है—"सूली ऊपर सेज पिया की किस विध मिलना होय" इस संसार का आदिस्रोत परमात्मा है। उस तक पहुंचना कठिन है।

अभ्यास-प्रश्न

1. "राखी" का दिन बीत गया। तुम्हें राखी बंधवाने की फुरसत न मिली।" इस कथन में व्यक्त पीड़ा को अपने शब्दों में लिखिए।
2. "तुम मेरे चंदामल भैया, तुम भी क्या इस चंदा की तरह अजनबी होना चाहते थे?" परम्परा जीजी ने भैया को यह बात क्यों कही है? विचारपूर्वक उत्तर लिखिए।
3. "अरसे के बाद बहन को उसके औपचारिक अनुष्ठान के लिए क्यों विवश किया? क्यों अनुष्ठान का नया अंकुर अपनी क्षण-छलकित भावुकता से सींच-सींचकर रोप गए?"
   इन पंक्तियों में बहन ने भाई को उलाहना क्यों दिया है? भाई की भावुकता को क्षण-छलकित क्यों बतलाया है?
4. "भैया, तुमने यह कैसे समझा कि आधुनिकता केवल बिजली के लट्टुओं से सजी बन्दनवार के नीचे ही प्रवेश कर सकती है।"
   परम्परा जीजी के इस कथन में छिपे भाव को स्पष्ट कीजिए।
5. जीजी ने आधुनिकता और यान्त्रिकता को एक मानने को भूल क्यों कहा है? समझाकर उत्तर लिखिए।
6. "भैया, तोड़ने का खिलवाड़ क्यों करते हो? क्या जोड़ने के लिए संसार में कुछ रह नहीं गया?" इस कथन के मूल भाव को स्पष्ट कीजिए।
7. 'सन्नाटों के सुन्न महल' के भाव को स्पष्ट कीजिए। जीजी कबीर की वाणी को जीने का सहारा क्यों मानती है?
8. 'सूली के ऊपर वे' का भाव स्पष्ट कीजिए। मीरां की यह अमर पंक्ति जीवन में सच्चा रस किस प्रकार घोल देती है, लिखिए।
9. परम्परा जीजी ने स्वयं को 'निराकांक्षी' क्यों कहा है?
10. "यह पत्र आज की तथाकथित बुद्धिमानों की पीढ़ी को सच्चा मार्गदर्शन प्रदान करता है।" इस कथन पर अपने विचार लिखिए।
11. इस पाठ में प्रयुक्त "संचित प्रकाश" पद में "संचित" शब्द का सर्वाधिक शुद्ध आशय क्या होगा?

(1) जुड़ा हुआ (2) प्रभातकालीन
(3) गोधूलि वेला (4) दरारों में से आता हुआ ( )

12. निम्नलिखित शब्दों में से ऐसा शब्द छांटिए जिसमें "ता" प्रत्यय का प्रयोग नहीं हुआ हो—
(1) समता (2) ममता
(3) शुभ्रता (4) सस्ता ( )

घायल वसन्त

हरिशंकर परसाई

लेखक-परिचय :

श्री हरिशंकर परसाई का जन्म सन् 1924 ई. में हुआ। एम. ए. उत्तीर्ण करने के बाद इन्होंने अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। अध्यापन-कार्य में विशेष रुचि नहीं होने के कारण श्री परसाई ने स्वतन्त्र लेखन को ही लक्ष्य बनाया। वर्तमान में वे जबलपुर में साहित्य-साधना में लगे हुए हैं।

इनकी प्रकाशित रचनाओं में 'हँसते हैं रोते हैं', 'तब की बात और थी', उल्लेखनीय कहानी-संग्रह हैं। 'तट की खोज' 'ज्वाला और जल', 'भूत के पाँव पीछे' उपन्यास हैं। 'रानी नागफनी की कहानी' इनकी स्फुट रचनाओं का संकलन है।

परसाईजी हिन्दी के प्रख्यात व्यंग्य कथाकार हैं। इनकी रचनाओं में जीवन के यथार्थ की सक्षम अभिव्यक्ति हुई है। हिन्दी में बौद्धिक धरातल पर गंभीर व्यंग्य की कमी खटकती थी। अक्सर लोग व्यंग्य और हास्य में अन्तर नहीं कर पाते हैं। यही कारण है कि वे व्यंग्य की बौद्धिकता को नहीं समझ पाते हैं।

परसाईजी ने व्यंग्य की बौद्धिकता को उजागर करते हुए मानवीय संवेदना की मार्मिक ऊँचाइयों को स्वयं तो छुआ ही है, साथ ही अपने पाठकों को भी वहाँ तक पहुँचा दिया है। श्री रवीन्द्रनाथ त्यागी ने परसाईजी के लिए कहा है "परसाईजी की रचनाएँ राजनीति, साहित्य, भ्रष्टाचार, आज के जीवन का अन्तर्विरोध, पाखण्ड और विसंगतियों को हमारे सामने इस प्रकार खोलती हैं जैसे कोई सर्जन चाकू से गले अंग काट-काट कर आपके सामने प्रस्तुत करता है। उनका व्यंग्य मात्र हँसाता नहीं है, वरन् तिलमिलाता है और सोचने को बरबस बाध्य कर देता है। कबीर जैसी उनकी अवधूत और निस्संग शैली उनकी एक

विशिष्ट उपलब्धि है और उसी के द्वारा उनका चिन्तन मुखरित हुआ है । परसाईजी का अधिकांश लेखन देश की तात्कालिक समस्याओं को लेकर व्यंग्यात्मक टिप्पणियों के रूप में हुआ है । परसाईजी ने हिन्दी कथा को अपनी ओर से नई दिशा प्रदान की है । इनकी हर कृति जीवन के यथार्थ की कृति है । इनकी व्यंग्यात्मक कहानियां सामाजिक एवं राजनीतिक विकृतियों पर तीव्र प्रहार करने वाली होती हैं ।

पाठ-परिचय :

"घायल वसन्त" निबन्ध में परसाईजी ने मध्यमवर्ग की पीड़ा को उजागर किया है । अभावों के बीच जीने वाला वसन्त के आगमन से बेखबर होता है । उसको सदैव यही डर रहता है कि कोई उधारी वसूल करने वाला दरवाजे पर खड़ा है ।

परसाईजी ने चीन तथा पाकिस्तान से छिड़े युद्धों का प्रसंग भी शीत लहर तथा लू के माध्यम से व्यक्त किया है । उनका मानना है कि दोनों तरफ से युद्ध का बिगुल बजने पर देश की स्वाभाविक प्रगति अवरुद्ध हो जाती है । श्री परसाईजी ने इन दोनों पाटों के बीच फँसे हुए देश के वसन्त को मुक्त करने की प्रेरणा दी है ।

एक स्थान पर परसाईजी ने कौओं की चोंच को सोने से मढ़ने की बात कह कर काली कमाई करने वालों पर सीधा व्यंग्य किया है । यह निबन्ध समाज एवं देश के वर्तमान परिवेश से सम्बद्ध समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट करता है ।

□ □ □

कल वसन्तोत्सव था । कवि वसन्त के आगमन की सूचना गा रहा था— 'प्रिय, फिर आया मादक वसन्त' !

मैंने सोचा, जिसे वसन्त के आने का बोध भी अपनी तरफ से कराना पड़े, उस प्रिय से तो शत्रु अच्छा है । ऐसे नासमझ को प्रकृति-विज्ञान पढ़ायेंगे या उससे प्यार करेंगे मगर कवि को न जाने क्यों ऐसा बेवकूफ पसन्द आता है ।

कवि मग्न हो कर गा रहा था—

"प्रिय, फिर आया मादक वसन्त !"

पहली पंक्ति सुनते ही मैं समझ गया, इस कविता का अन्त 'हा हंत' से होगा, और हुआ । अन्त, सन्त, दिगन्त आदि के बाद सिवा 'हा हंत' के कौन पद पूरा करता ? तुक की यही मजबूरी है । लीक के छोर पर यही गहरा गढ़ा होता है । तुक की गुलामी करोगे तो आरम्भ चाहे 'वसन्त' से कर लो, अन्त जरूर 'हा हन्त' से होगा । सिर्फ कवि ऐसा नहीं करता, और लोग भी, इस चक्कर में होते हैं । व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में तुक पर तुक बिठाते चलते हैं और वसन्त से शुरू करके 'हा हन्त' तक पहुंचते हैं । तुकें बराबर फिट बैठती है, पर जीवन का आवेग निकल भागता है । तुकें हमारा पीछा छोड़ नहीं रही हैं । हाल ही में

हमारी समाजवादी सरकार के अर्थमन्त्री ने दबा सोना निकलवाने की जो अपील की, उसकी तुक शुद्ध सर्वोदय से मिलायी—'सोना दबाने वालो, देश के लिए स्वेच्छा से सोना दे दो।' तुक उत्तम प्रकार की थी, साँप तक का दिल नहीं दुखा। पर सोना चार हाथ और नीचे चला गया। आखिर कब तक हम तुक को तिलांजलि देंगे? कब बेतुका चलने की हिम्मत करेंगे?

कवि ने कविता समाप्त कर दी थी। उसका "हा हन्त" आ गया था। मैंने कहा, धत्त् रे की! सात तुकों में ही टें बोल गया। राष्ट्रकवि इस पर कम-से-कम इक्यावन तुकें बांधते हैं। नौ तुकें तो उन्होंने 'चक्र' पर बांधी हैं। (देखो "यशोधरा" पृष्ठ 13)। पर तू मुझे क्या बतायेगा कि वसन्त आ गया। मुझे तो सवेरे से ही मालूम है। सवेरे वसन्त ने मेरा दरवाजा भी खटखटाया था। मैं रजाई ओढ़े सो रहा था। मैंने पूछा—'कौन?' जवाब आया—'मैं वसन्त।' मैं घबरा उठा। जिस दुकान से सामान उधार लेता हूँ, उसके नौकर का नाम भी वसन्तलाल है। वह उधारी वसूल करने आया था। कैसा नाम है, और कैसा काम करना पड़ता है इसे! इसका नाम पतझड़दास या तुषारपात होना चाहिए। वसन्त अगर उधारी वसूल करता फिरता है, तो किसी दिन आनन्दकर थानेदार मुझे गिरफ्तार करके ले जायेगा और अमृतलाल जल्लाद फांसी पर लटका देगा।

वसन्तलाल ने मेरा मुहूर्त बिगाड़ दिया। इधर से कहीं ऋतुराज वसन्त निकलता होगा, तो यह सोचेगा कि ऐसे के पास क्या जाना जिसके दरवाजे पर सवेरे से उधारी वाले खड़े रहते हैं। इस वसन्तलाल ने मेरा मौसम ही खराब कर दिया।

मैंने उसे टाला और फिर ओढ़ कर सो गया। आंखें झँप गयीं थीं। मुझे लगा, दरवाजे पर फिर दस्तक हुई। मैंने पूछा—'कौन?' जवाब आया—'मैं वसन्त!' मैं खीझ उठा 'कह तो दिया कि फिर आना।' उधर से जवाब आया 'मैं बार-बार कब तक आता रहूँगा? मैं किसी बनिये का नौकर नहीं हूँ, ऋतुराज वसन्त हूँ। आज तुम्हारे द्वार पर फिर आया हूँ और तुम फिर सोते मिले हो। अलाल अभागे, उठ बाहर तो देख। ठूँठों ने भी नव पल्लव पहन रखे हैं। तुम्हारे सामने की प्रौढ़ा नीम तक नवोढ़ा से हाव-भाव कर रही है-और बहुत भद्दी लग रही है।'

मैंने मुँह उघाड़ कर कहा, 'भई माफ करना, मैंने तुम्हें पहचाना नहीं। अपनी यही विडम्बना है कि ऋतुराज वसन्त भी आये तो लगता है उधारी के तगादे वाला आया, उमगें तो मेरे मन में भी है, पर यार ठंड बहुत लगती है। वह जाने के लिए मुड़ा। मैंने कहा, 'जाते-जाते एक छोटा-सा काम मेरा करते जाना। सुना है, तुम ऊबड़-खाबड़ चेहरों को चिकना कर देते हो, 'फेसलिफ्टिंग' के अच्छे कारीगर हो तुम। तो जरा यार, मेरी सीढ़ी ठीक करते जाना, उखड़ गयी है।'

उसे बुरा लगा। बुरा लगने की बात है। जो सुन्दरियों के चेहरे सुधारने का कारीगर है, उसे मैंने सीढ़ी सुधारने के लिए कहा। वह चला गया।

मैं उठा और शाल लपेट कर बरामदे में आया। हजारों सालों के संचित संस्कार मेरे मन पर लदे हैं, टनों कवि-कल्पनाएँ जमी हैं। सोचा, वसन्त है तो कोयल होगी ही। पर न कोयल दीखी न उसकी कूक सुनाई दी। सामने की हवेली के कंगूरे पर बैठा कौआ 'काँव-काँव' कर उठा। काला, कुरूप कर्कश कौआ—मेरी सौन्दर्य-भावना को ठेस लगी। मैंने उसे भगाने के लिए कंकड़ उठाया। तभी ख्याल आया कि एक परम्परा ने कौए को भी प्रतिष्ठा दे दी है। यह विरहिणी को प्रियतम के आगमन का संदेश देने वाला माना जाता है। सोचा, कहीं यह आस-पास की किसी विरहिणी को प्रिय के आने का सगुन न बता रहा हो। मैं विरहि-णियों के रास्ते में कभी नहीं आता, पतिव्रताओं से तो बहुत डरता हूँ। मैंने कंकड़ डाल दिया। कौआ फिर बोला। नायिका ने सोने से उसकी चोंच मढ़ाने का वादा कर दिया होगा। शाम की गाड़ी से अगर नायक दौरे से वापस आ गया, तो कल नायिका बाजार से आने वाले सामान की जो सूची उसके हाथों में देगी, उसमें दो तोला सोना भी लिखा होगा। नायक पूछेगा—'प्रिय, सोना तो अब काला बाजार में मिलता है। लेकिन अब तुम सोने का करोगी क्या?' नायिका लजा कर कहेगी—'उस कौवे की चोंच मढ़ानी है, जो कल सवेरे तुम्हारे आने का सगुन बता गया था।' तब नायक कहेगा—'प्रिय, तुम बहुत भोली हो। मेरे दौरे का कार्यक्रम यह कौआ थोड़े ही बनाता है, वह कौवा बनाता है, जिसे हम 'बड़ा साहब' कहते हैं। इस कलूटे की चोंच सोने से क्यों मढ़ाती हो? हमारी दुर्दशा का यही तो कारण है कि तमाम कौए सोने से चोंच मढ़ाये हैं, और इधर हमारे पास हथियार खरीदने को सोना नहीं है। हमें तो कौवों की चोंच से खरोंच लेना है। जो आनाकानी करेंगे, उनकी चोंच काटकर सोना निकाल लेंगे। प्रिये, वह बड़ी गलत परम्परा है, जिसमें हंस और मोर की चोंच तो नंगी रहे, पर कौवे की चोंच पर सुन्दरी खुद सोना मढ़े।' नायिका चुप हो जायेगी। स्वर्ण-नियन्त्रण कानून से सबसे ज्यादा नुकसान कौवों और विरहिणियों का हुआ है। अगर कौए ने चौदह केरेट के सोने से चोंच मढ़ाना स्वीकार नहीं किया, तो विरहिणी को प्रिय के आगमन की सूचना कौन देगा?

कौआ फिर बोला। मैं इससे युगों से घृणा करता हूँ। तब से, जब इसने सीता के पाँवों में चोंच मारी थी। राम ने अपने हाथ से फूल चुन कर उनके आभूषण बनाकर सीता को पहनाये। इसी समय इन्द्र का बिगड़ैल बेटा जयन्त आवारा-गर्दी करता वहाँ आया और कौवा बनकर सीता के पांव में चोंच मारने लगा। ये बड़े आदमी के बिगड़ैल लड़के हमेशा दूसरों का प्रेम बिगाड़ते हैं। यह

कौआ भी मुझसे नाराज है, क्योंकि अपने घर के झरोखे में गौरैयों को घोंसले बना लेने दिये हैं।

पर इस मौसम में कोयल कहाँ है? वह अमराई में होगी। लोगन से अमराई छूटती नहीं है, इसलिए इस बसन्त में कौए की बन आयी है। वह तो मौकापरस्त है, घुसने के लिए पोल ढूंढ़ता है। कोयल ने उसे जगह दे दी है। वह अमराई की छाया में आराम से बैठी है। और इधर हर ऊँचाई पर कौआ बैठा—'काँव-काँव' कर रहा है। मुझे कोयल के पक्ष में उदास पुरातन प्रेमियों की आह भी सुनाई देती है—'हाय, अब अमराइयाँ यहाँ कहाँ हैं कि कोयलें बोलें यहाँ तो ये शहर बस गये हैं और कारखाने बन गये हैं।' मैं कहता हूँ सर्वत्र अमराइयाँ नहीं हैं तो ठीक ही नहीं हैं, आखिर हम कब तक जंगली बने रहते? मगर अमराई और कुंज और बगीचे भी हमें प्यारे हैं। हम कारखाने को अमराई से घेर देंगे और हर मुहल्ले में बगीचा लगा देंगे। अभी थोड़ी देर है, पर कोयल को धीरज के साथ हमारा साथ तो देना था। कुछ दिन धूप तो हमारे साथ सहनी थी जिसने धूप में साथ नहीं दिया, वह छाया में कैसे हाथ बँटाएगी? जब हम अमराई बना लेंगे, तब क्या वह उसमें रह सकेगी? नहीं, तब तक कौए अमराई पर कब्जा कर लेंगे। कोयल को अभी आना चाहिए। अभी जब हम मिट्टी खोदें, पानी सींचें और खाद दें तभी उसे गाना चाहिए।

कौआ फिर बोला। विरहिणी की भावना का ख्याल करके मैं सह रहा हूँ। मैं बाहर निकल पड़ता हूँ। चौराहे पर पहली बसन्ती साड़ी दिखी। मैं उसे जानता हूँ। यौवन की एड़ी दिख रही है—वह जा रहा है—वह जा रहा है। अभी कुछ महीने पहले ही शादी हुई है। मैं तो कहता आ रहा था कि चाहे अभी ले, "सखी री, यह डाल वसन वासंती लेगी"—(निराला) उसने वसन वासंती ले लिया। कुछ हजार में उसे यह बूढ़ा हो रहा पति मिल गया। वह भी उसके साथ है। वसन्त का अन्तिम चरण और पतझड़ साथ जा रहे हैं। उसने माँग में बहुत-सा सिन्दूर चुपड़ रखा है। जिसकी जितनी मुश्किल से शादी होती है, वह बेचारी उतनी ही बड़ी माँग भरती है। उसने बड़े अभिमान से मेरी तरफ देखा। फिर पति को देखा, उसकी नजर में ठसक और ताना है, अँगूठा दिखा रही है कि ले, मुझे तो यह मिल ही गया। मगर यह क्या? वह ठंड से काँप रही है और 'सी सी' कर रही है। वसन्त में वासन्ती साड़ी की कँपकँपी छूट रही है।

यह कैसा वसन्त है जो शीत के डर से काँप रहा है? क्या कहा था विद्या-पति ने—'सरस वसन्त समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे!' नहीं मेरे कवि, दक्षिण से मलय पवन नहीं बह रहा। वह उत्तर से बर्फीली हवा आ रही

है। हिमालय के उस पार से आकर उस बर्फीली हवा ने हमारे वसन्त का गला दबा दिया है। हिमालय के पार बहुत-सी बर्फ बनायी जा रही है, जिसमें सारी मनुष्य जाति को मछली की तरह जमा कर रखा जायगा। यह बड़ी भारी साजिश है—बर्फ की साजिश ! इसी बर्फ की हवा ने हमारे आते वसन्त को दबा रखा है।

यों हमें विश्वास है कि वसन्त आयेगा। शैली ने कहा—अगर शीत आ गयी है, तो क्या वसन्त बहुत पीछे होगा ? वसन्त तो शीत के पीछे लगा हुआ ही आ रहा है। पर उसके पीछे गरमी भी तो लगी है। अभी उत्तर से शीत लहर आ रही है तो फिर पश्चिम से लू भी चल सकती है। बर्फ और आग के बीच में हमारा वसन्त फँसा है। इधर शीत उसे दबा रही है और उधर से गरमी। और वसन्त सिकुड़ता जा रहा है।

मौसम की मेहरबानी पर भरोसा करेंगे, तो शीत के निपटते-निपटते लू तंग करने लगेगी। मौसम के इन्तजार से कुछ नहीं होगा। वसन्त अपने आप नहीं आता, उसे लाया जाता है। सहज आने वाला तो पतझड़ होता है, वसन्त नहीं। अपने आप तो पत्ते झड़ते हैं। नये पत्ते तो वृक्ष का प्राणरस पीकर पैदा होते हैं। वसन्त यों नहीं आता। शीत और गरमी के बीच से जितना वसन्त निकाल सकें, निकाल ले। दो पाटों के बीच में फँसा है, देश का वसन्त। पाट और आगे खिसक रहे हैं। वसन्त को बचाना है तो जोर लगा कर इन दोनों पाटों को पीछे ढकेलो—इधर शीत को, उधर गरमी को। तब बीच में से निकलेगा हमारा घायल वसन्त।

—'तिरछी रेखाएँ' से

अभ्यास-प्रश्न

1. 'आखिर हम कब तक तुक को तिलांजलि देंगे ? कब बेतुका बनने की हिम्मत करेंगे ?' बेतुका बनने के भाव को स्पष्ट कीजिए।
2. "वसन्तलाल ने मेरा मुहूर्त्त बिगाड़ दिया।" इस कथन के पीछे छिपे हुए भाव को अपनी भाषा में लिखिए।
3. "अपनी यही विडम्बना है कि ऋतुराज वसन्त भी आए तो लगता है कि उधारी के तगादे वाला आया।"
   परसाईजी ने मध्यम वर्ग की पीड़ा को इस कथन में किस प्रकार प्रकट किया है ? स्पष्ट कीजिए।
4. "हमारी दुर्दशा का यही तो कारण है कि तमाम कौए सोने से चोंच मढ़ाए हैं और हमारे पास हथियार खरीदने के लिए सोना नहीं है।" इस कथन के पीछे छिपे हुए भाव को स्पष्ट कीजिए।
5. "इधर हर ऊँचाई पर बैठा कौआ-काँव-काँव कर रहा है।" स्पष्ट कीजिए।

6. "नहीं मेरे कवि, दक्षिण से मलय पवन नहीं बह रहा। यह उत्तर से बर्फीली हवा आ रही है।" मलय पवन तथा बर्फीली हवा के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
7. "अभी उत्तर से शीत लहर आ रही है तो फिर पश्चिम से लू भी चल सकती है।" शीत लहर तथा लू के पीछे छिपे हुए मूल कथ्य को स्पष्ट कीजिए।
8. "दो पाटों के बीच फँसा है देश का बसन्त" में दो पाट कौनसे हैं स्पष्ट कीजिए।
9. "बसन्त को बचाना है तो जोर लगाकर इन दोनों पाटों को पीछे ढकेला—इधर शीत को, उधर गरमी को। तब बीच में से निकलेगा हमारा घायल बसन्त।" देश के बसन्त को घायल क्यों कहा गया है ? इसको पीड़ा रहित करने का क्या उपाय है ?
10. "तिलांजलि" का सर्वाधिक शुद्ध विग्रह क्या होगा ?
    (1) तिल बराबर अंजलि (2) तिलों से अंजलि त्याग
    (3) तिलों की अंजलि (4) तिलों के लिए अंजलि ( )
11. किस शब्द में "क" प्रत्यय करने वाले का अर्थ नहीं दे रहा है ?
    (1) मादक (2) साधक
    (3) बाधक (4) मानक ( )

—·—

पाप के चार हथियार

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

लेखक-परिचय :

श्री कन्हैयालाल मिश्र का जन्म सहारनपुर जिले के देवबन्द गाँव में सन् 1906 ई. में हुआ। आरम्भ से ही इनकी रुचि राजनीतिक और सामाजिक कार्यों में रही। ये गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। धर्म, राष्ट्रीयता तथा आदर्श-वाद में मिश्रजी की पूर्ण आस्था है। ये स्वतन्त्रता-आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे हैं। श्री मिश्र 'सादा जीवन उच्च विचार' के सिद्धान्त को जीवन में पूर्ण रूप से अपनाते हैं।

जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से मिश्रजी ने दैनिक जीवन के बड़े से बड़े सत्य को अभिव्यक्त किया है। इनके रेखाचित्रों तथा संस्मरणों का

हिन्दी-साहित्य में विशेष स्थान है। आपका चिन्तन गम्भीर है। भाषा सरल एवं शैली मनमोहक है। आपका वर्णन आत्मीयता से परिपूर्ण होता है। आपकी सशक्त एवं भावमयी रचनाएँ सबको प्रभावित करती हैं।

श्री मिश्रजी की प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

'आकाश के तारे धरती के फूल' (कहानी संग्रह) 'जिन्दगी मुस्कराई,' 'बाजे पायलिया के घुंघरू' (निबन्ध संग्रह) 'दीप जले शंख बजे,' 'माटी हो गई सोना' (संस्मरण एवं रेखाचित्र)।

पाठ-परिचय :

श्री मिश्र जी के इस ललित निबन्ध में पाप के चार हथियारों का परिचय दिया गया है। उपेक्षा, निन्दा, हत्या और श्रद्धा पाप के चार हथियार हैं। पाप सर्वप्रथम उपेक्षा का हथियार काम में लेता है। इस हथियार के प्रभावहीन होने के बाद वह निन्दा का सहारा लेता है। यदि उपेक्षा और निन्दा के हथियारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो वह हत्या का सहारा लेता है। इतने प्रयत्नों के बाद भी यदि सुधारक का यश बढ़ता ही रहता है तो पाप ब्रह्मास्त्र के रूप में श्रद्धा का हथियार काम में लेता है। उसे श्रद्धेय के ऊँचे आसन पर बिठाकर सुधारक की पूजा करता है। उसकी कीर्त्ति में ग्रन्थों की रचना करता है। उसके मन्दिर और स्मारक बनाने में लग जाता है। सामान्य जनता उस सुधारक को भगवान मान लेती है और धीरे-धीरे भूल जाती है।

श्री मिश्र इस बात को जोर देकर कहते हैं कि इतने धर्मगुरुओं, पैगम्बरों तथा तीर्थंकरों के उपदेशों के उपरान्त भी समाज में सुधार नहीं आने का यही कारण है। श्रद्धेय बनने के बाद सुधारक का मूल कार्य समाप्त हो जाता है। समाज को सुधारने का संकल्प लेकर चलने वाले व्यक्तियों को श्रद्धेय बनने की भूल नहीं करनी चाहिए। उपेक्षा और निन्दा तो अवश्य होगी। इनके प्रभाव को क्षीण करने के लिए सुधारक को अपने लक्ष्य की ओर ध्यान देना चाहिए।

सुधारकों की हत्या का लम्बा इतिहास है। ईसा, सुकरात, दयानन्द तथा गाँधी के बलिदानों का उदाहरण देकर श्री मिश्र जी ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि उत्तम लक्ष्य की ओर बढ़ने वाले महापुरुषों को अकाल मृत्यु का सामना करना पड़ा है। यह शहादत उनके नाम को उज्ज्वल करने वाली ही सिद्ध हुई है।

यह निबन्ध अत्यन्त प्रेरक तथा भाव-प्रधान है। आज के परिप्रेक्ष्य में यह निबन्ध एक नवसन्देश दे रहा है।

□ □ □

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ का एक पैराग्राफ मैंने पढ़ा है। वह उनके अपने ही सम्बन्ध में है : "मैं खुली सड़क पर कोड़े खाने से इसलिए बच जाता हूँ कि लोग मेरी बातों को दिल्लगी समझकर उड़ा देते हैं। बात यूँ है कि मेरे एक शब्द पर भी वे गौर करें, तो समाज का ढाँचा डगमगा उठे।

"वे मुझे बर्दाश्त नहीं कर सकते, यदि मुझ पर हँसे नहीं। मेरी मानसिक और नैतिक महत्ता लोगों के लिए असहनीय है। उन्हें उबाने वाली खूबियों का पुंज लोगों के गले के नीचे कैसे उतरे? इसलिए मेरे नागरिक बन्धु या तो कान पर उँगली रख लेते हैं या बेवकूफी से भरी हँसी के अंबार के नीचे ढँक देते हैं मेरी बात।"

शॉ के इन शब्दों में अहंकार की पैनी धार है यह कहकर हम इन शब्दों की उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि इनमें संसार का एक बहुत महत्वपूर्ण सत्य कह दिया गया है।

संसार में पाप हैं, जीवन में दोष, व्यवस्था में अन्याय हैं, व्यवहार में अत्याचार—— और इस तरह समाज पीड़ित वर्गों में बंट गया है। सुधारक आते हैं, जीवन की इन विडंबनाओं पर धनघोर चोट करते हैं। विडंबनाएँ टूटती-बिखरती नजर आती हैं, पर हम देखते हैं कि सुधारक चले जाते हैं और विडंबनाएँ अपना काम करती रहती हैं।

आखिर इसका रहस्य क्या है कि संसार में इतने महान पुरुष, सुधारक, तीर्थंकर, अवतार, संत और पैगंबर आ चुके, पर यह संसार अभी तक वैसा-का-वैसा ही चल रहा है। इसे वे क्यों नहीं बदल पाए? दूसरे शब्दों में जीवन के पापों और विडंबनाओं के पास वह कौन-सी शक्ति है, जिससे वे सुधारकों के इन शक्तिशाली आक्रमणों को झेल जाते हैं और टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर नहीं जाते?

शॉ ने इसका उत्तर दिया है कि मुझ पर हँसकर और इस रूप में मेरी उपेक्षा करके वे मुझे सह लेते हैं। यह मुहावरे की भाषा में सिर झुकाकर लहर को ऊपर से उतार देना है।

शॉ की बात सच है, पर यह सच्चाई एकांगी है। सत्य इतना ही नहीं है। पाप के पास चार शस्त्र हैं, जिनसे वह सुधारक के सत्य को जीतता या कम से कम असफल करता है। मैंने जीवन का जो थोड़ा-बहुत अध्ययन किया है, उसके अनुसार पाप के ये चार शस्त्र इस प्रकार हैं—

उपेक्षा, निन्दा, हत्या और श्रद्धा।

सुधारक पापों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा बुलन्द करता है, तो पाप और उसका प्रतिनिधि पापी समाज उसकी उपेक्षा करता है, उसकी ओर ध्यान नहीं देता और कभी-कभी कुछ सुन भी लेता है, तो सुनकर हँस देता है, जैसे वह किसी

पागल की बड़बड़ हो, प्रलाप हो। इन क्षणों में पाप का नारा होता है, "अरे छोड़ो इसे और अपना काम करो।"

सुधारक का सत्य उपेक्षा की इस रगड़ से कुछ तेज होता जाता है, उसके स्वर अब पहले से कुछ तेज हो जाते हैं और कुछ ऊँचे भी।

अब समाज का पाप विवश हो जाता है कि वह सुधारक की बात सुने। वह सुनता है और उस पर निन्दा की बौछारें फेंकने लगता है। सुधारक, सत्य और समाज के पाप के बीच यह गालियों की दीवार खड़ी करने का प्रयत्न है। जीवन के अनुभवों की साक्षी है कि सुधारक के जो जितना समीप है, वह उसका उतना ही बड़ा निन्दक होता है। यही कारण कि सुधारकों को प्रायः क्षेत्र बदलने पड़े हैं।

इन क्षणों में पाप का नारा होता है :

"अजी बेवकूफ है, लोगों को बेवकूफ बनाना चाहता है।"

सुधारक का सत्य निंदा की इस रगड़ से और भी प्रखर हो जाता है। अब उसकी धार चोट ही नहीं करती, काटती भी है।

पाप के लिए यह चोट धीरे-धीरे असह्य हो उठती है और वह बौखला उठता है। अब वह अपने सब से तेज शस्त्र को हाथ में लेता है। यह शस्त्र है हत्या।

सुकरात के लिए यह जहर का प्याला है, तो ईसा के लिए सूली, दयानन्द के लिए वह पिसा काँच है, तो गाँधी के लिए गोली।

इन क्षणों में पाप का नारा होता है, "ओह, मैं तुम्हें खिलौना समझता रहा और तुम साँप निकले। पर मैं साँप को जीता नहीं छोड़ूंगा—पीस डालूँगा।"

सुधारक का सत्य हत्या के इस घर्षण से प्रचंड हो उठता है। शहादत उसे ऐसी धार देती है कि सुधारक के जीवन में उसे जो शक्ति प्राप्त न थी, अब हो जाती है। सूर्यों का ताप और प्रकाश उसमें समा जाता है, बिजलियों की कड़क और तूफानों का वेग भी।

पाप काँपता है और अब उसे लगता है कि इस वेग में वह पिस जाएगा—बिखर जाएगा। तब पाप अपना ब्रह्मास्त्र तौलता है और तौलकर सत्य पर फेंकता है। यह ब्रह्मास्त्र है-श्रद्धा।

इन क्षणों में पाप का नारा होता है—

"सत्य की जय ! सुधारक की जय !"

अब वह सुधारक की करने लगता है चरणवंदना और उसके सत्य की महिमा का गान और बखान।

सुधारक होता है करुणाशील और उसका सत्य सरल विश्वासी। वह पहले चौंकता है, फिर कोमल पड़ जाता है और तब उसका वेग बन जाता है शांत और वातावरण में छा जाती है सुकुमारता।

पाप अभी तक सुधारक और सत्य के जो स्तोत्र पढ़ता जा रहा था, उनका करता है यूं उपसंहार, "सुधारक महान है, वह लोकोत्तर है, मानव नहीं, वह तो भगवान है, तीर्थंकर है, अवतार है, पैगम्बर है, संत है। उसकी वाणी में जो सत्य है, वह स्वर्ग का अमृत है, वह हमारा वंदनीय है। स्मरणीय है। पर हम पृथ्वी के साधारण मनुष्यों के लिए वैसा बनना असंभव है, उस सत्य को जीवन में उतारना हमारा आदर्श है, पर आदर्श को कब, कहाँ, कौन पा सकता है ?"

और इसके बाद उसका नारा हो जाता है, "महाप्रभु सुधारक वंदनीय है, उसका सत्य महान है, वह लोकोत्तर है।"

यह नारा ऊँचा उठता रहता है, अधिक-से-अधिक दूर तक उसकी गूंज फैलती रहती है, लोग उसमें शामिल होते रहते हैं। पर अब सब का ध्यान सुधारक में नहीं, उसकी लोकोत्तरता में समाया रहता है, सुधारक के सत्य में नहीं, उसके सूक्ष्म-से सूक्ष्म अर्थों और फलितार्थों के करने में जुटा रहता है।

अब सुधारक के बनने लगते हैं स्मारक और मन्दिर और उसके सत्य के ग्रन्थ और भाष्य।

बस यहीं सुधारक और उसके सत्य की पराजय पूरी तरह हो जाती है।

पाप का यह ब्रह्मास्त्र अतीत में अजेय रहा है और वर्तमान में भी अजेय है। कौन कह सकता है कि भविष्य में कभी कोई इसकी अजेयता को खण्डित कर सकेगा या नहीं ?

—"बाजे पायलिया के घुंघरू" से

अभ्यास-प्रश्न

1. "मैं खुली सड़क पर कोड़े खाने से इसलिए बच जाता हूँ कि लोग मेरी बातों को दिल्लगी समझकर उड़ा देते हैं।" जार्ज बर्नार्ड शॉ का यह कथन किस बिन्दु की ओर हमारा ध्यान खींचता है ? इस कथन के सम्बन्ध में अपने विचार लिखिए।
2. उपेक्षा तथा निन्दा से सुधारक प्रभावित क्यों नहीं होते हैं ? पाप के ये हथियार सुधारक के कार्य को अधिक गति देने वाले क्यों सिद्ध होते हैं ? लिखिए।
3. पाप अपने हत्या रूपी हथियार का सहारा किस स्थिति में लेता है ? सुधारकों की हत्या कार्य को आगे बढ़ाने वाली सिद्ध क्यों होती है ?
4. ईसा, सुकरात, दयानन्द तथा गाँधी की हत्या ने उनके कार्य को किस प्रकार आगे बढ़ाया ? विचारपूर्वक उत्तर लिखिए।
5. श्री मिश्र ने श्रद्धा को ब्रह्मास्त्र क्यों कहा है ? सुधारक इसके प्रभाव से क्यों नहीं बच पाते हैं ?

6. "श्री 'प्रभाकर' ने इस निबन्ध में एक संदेश दिया है। यह निबन्ध आज की परिस्थितियों में, दिशाबोध देने वाला सिद्ध होता है।" इस कथन पर अपने विचार लिखिए।
7. "साँच कहूँ तो मारि है,
    झूठे जग पतियाय।
   यह जग काली कूकरी,
    जो छेड़े तो खाय।"

   कबीर की यह साखी इस निबन्ध के संदेश को किस रूप में कह रही है? उत्तर लिखिए।
8. निम्न में से उस शब्द की पहचान कीजिए जिसका अर्थ अन्य सभी से भिन्न हो—
   (1) विद्रोह (2) विज्ञान (3) विशेष (4) विनय ( )
9. वातावरण शब्द का सर्वाधिक शुद्ध विग्रह क्या होगा?
   (1) वात का आवरण (2) वात पर आवरण
   (3) वात से आवरण (4) वात और आवरण ( )

एक और मौत

आलम शाह खान

लेखक-परिचय

डॉ. आलम शाह खान का जन्म उदयपुर में सन् 1936 में हुआ। उनका प्रारम्भिक जीवन आर्थिक कठिनाइयों में बीता। छोटी-छोटी नौकरियाँ करते हुए अनेक कठिनाइयों के बीच बढ़ते रहे और आगे पढ़ते रहे। धीरज और आस्था के बल पर श्री खान एम. ए. कर सके। इसके बाद आपने महाकवि सूर्यमल्ल के 'वंश भास्कर' पर शोध-कार्य किया और पी.एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। विगत बीस वर्षों से हिन्दी-राजस्थानी के अध्ययन-अध्यापन में लगे हुए हैं। इस समय आप सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के राजस्थानी विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य कर रहे हैं।

आलम शाह खान अपनी पीढ़ी के सशक्त कथाकार हैं। किसी छोटे से जुल्म को भी बिना रोके, जाने नहीं दिया जाय, यह इनके लेखन का मुख्य उद्देश्य है। अपनी लेखकीय आस्था के सम्बन्ध में श्री आलम शाह कहते हैं "मैं अपने चारों ओर फैली व्यवस्था और विधान की बुराई देखता हूँ, परखता हूँ। उसे

सुनता और समझता हूँ और फिर अपनी कहानियों के माध्यम से कहता हूँ-लिखता हूँ, जिससे आदमी, अदना आदमी यथास्थिति के घेरे से निकलकर बुरे लोगों की बुरी बात को समझ सके और बुराई के खिलाफ एक बड़ी लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हो सके।"

आलम शाह खान सामान्य जीवन की विसंगतियों को उन्हीं की भाषा में कहने में कुशल हैं। वे समाज के सोच को बड़ी सहृदयता के साथ अपनी रचना में स्थान देते है। उत्पीड़ित तथा वंचित वर्ग के प्रति उनके मन में अपार स्नेह है। वे बेझिझक अपनी बात कहते हैं और इस सड़ी-गली व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं।

इनकी प्रकाशित कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

राजस्थानी वचनिकाएँ, वंशभास्कर : एक अध्ययन, राजस्थान के कहानीकार (सम्पादित) पराई प्यास का सफर (इस पर दूरदर्शन की फिल्म बन गई है) (कहानी संग्रह) किराए की कोख (कहानी संग्रह) मीरां-लोक तात्विक अध्ययन, एक और सीता (राजस्थानी साहित्य एकेडमी द्वारा पुरस्कृत) एक गधे की जनम कुंडली।

आपकी अनेक कहानियों का अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

पाठ-परिचय :

डॉ. आलम शाह खान ने इस कहानी में उपेक्षित तथा वंचित वर्ग की व्यथा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। जेठूमल तथा सत्तो दिन रात परिश्रम करने के उपरान्त भी अपने बच्चों को पालने में असमर्थ रहते हैं।

जेठूमल कुलफी बेचता है। वर्षा हो जाने से कुलफी नहीं बिकने पर हताश जेठूमल की व्यथा को शब्द-चित्रों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। छोटे बच्चे देऊ को दूध नहीं मिला पाने से व्यथित सत्तो की अनकही पीड़ा भी कहानी में बिखरी हुई है।

टोपन की मौत तो सारी बस्ती को हिला देती है। दैनिक मजदूरी के सहारे जीने वाले उत्तोमल, दुलाला आदि की मौन व्यथा कहानी को गंभीर बनाती है। जेठूमल की कुलफियाँ तैयार हैं। बिरादरी का काम होने के कारण वह टोपन की अन्तिम यात्रा में सम्मिलित होता है। वह अरथी को कंधा देता है। विद्यालय के सामने पहुंचते ही उसकी प्रतिदिन की 'कुलफी की मलाई' की टेर निकल ही पड़ती है। सब उसकी ओर घृणा से देखते हैं।

जेठूमल करे तो क्या करे? भूख की आग सबसे बड़ी है। भूख के कारण व्यक्ति शरीर से क्षीण हो जाता है और क्षीण व्यक्ति की करुणा समाप्त हो जाती है।

यह कहानी जीवन से जूझने वाले वर्ग की पीड़ा को मुखरित करती है। पीड़ा को प्रकट करने के लिए डॉ. खान ने 'सूरज का गलना', 'पीतल के पत्तों में सिक्कों की आवाज', 'टोपन की मौत का दरिया' प्रयोग किए हैं जो व्यथा का सही चित्र प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

कहानी में वंचित, दलित तथा तिरस्कृत जीवन की ध्वस्त आशा तथा आकांक्षा का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। भाषा सरल तथा शैली जीवन्त है।

☐ ☐ ☐

कल जोर का पानी बरसा था। एकाएक ही उमस उठी, बढ़ी और फिर गहरा कर घनी हो गयी थी। कहीं हवा नहीं, उजास नहीं—बस धुंधलका और घुटन। उसे लगा था, जैसे किसी ने सारी बस्ती को डिबिया में बन्द करके उमस और धुंधलके में छोड़ दिया है। ठीक उसी तरह जैसे दूध और चीनी के घोल को डिबिया में ढालकर, कुल्फी बनाने के लिए घड़े में छोड़ देता है।

बिजलीघर के पहले भोंपू के साथ वह उठा था। नीम चबाते-चबाते उसने दूध, चीनी और बर्फ के लिए सत्ती से पैसे मांगे थे—तभी छाती चिचोड़ते टेऊ को परे धकेलकर वह भन्नाती हुई उठी थी और पैसे धरने की कुलिया को औंधी करके उसके सामने फेंक दिया था—बजाय सिक्कों के उसके सामने काली ठीकरियां बिखर गयी थीं। उसकी आंखों के गड्ढ़ों में सूरज की लाल झांई भभक उठी थी पर दूसरे ही पल लुंगी की गांठ ठीक करता हुआ वह घर से बाहर हो गया था। नौ बजते-बजते जब वह लौटा, तब तक उसने उधारी पर सब जुटा लिया था। बिना मुंह खोले वह फेरी की तैयारी में जुट गया था और कोई घण्टे भर बाद ही—'कुल-फी——मलाई' की टेर बुलन्द करता हुआ कंधे पर घड़ा चढ़ाये घर से निकल पड़ा था।

"खास बाजार" से होकर स्कूल जाने वाली सड़क पर जब वह पहुंचा तब सूरज तपने लगा था। अब उसे अपने कंधे पर घड़े के साथ ही झुलसा देने वाली किरनों का बोझ भी महसूस होने लगा। पीठ पर पसीने से चिपके गाढ़े की फटी कमीज पर किरनें कोड़े की तरह लग रही थीं। मोटर-टायर के उधड़े हुए चप्पल से बाहर निकली अंगुलियां कोलतार की नंगी सड़क से जब-जब छू जाती थीं, उसे लगता था, जैसे उसका पैर ताते तवे से छू गया हो। पर उससे उसे एक अजीब राहत महसूस हुई थी। 'ऐसी तपन में ठंडी कुल्फी भला कौन नहीं खाना चाहेगा ?' इस खयाल की कौंध के साथ ही उसने टेर लगायी थी—'कुल-फी—— मलाई' जो सुनसान सड़क के किनारों पर खड़े बिजली के खंभों से टकराकर फिर उसके कंठ में आकर बैठ गयी थी।

छोटे मदरसे से बड़े मदरसे तक ढेर सारी कुल्फियां निकल जायेंगी——उसने सोचा था और उसके कदमों में अपने आप ही तेजी आ गई थी। सामने गली के नुक्कड़ पर खेलते बच्चों को देखकर उसने फिर हांक लगाई। 'ए कुल्फी!' की आवाज के लंगर के साथ वह गली की ओर मुड़ा ही था कि उसकी आंखे बंद हो गयी। कुछ पल बाद उसने धूल-भरी आंखे मलते हुए गली की तरफ देखा तो पाया, बच्चे घरों की ओर भाग रहे हैं। एकाएक ही जोर का अंधड़ आया था और आकाश में धूल घुमड़ने लगी थी। आस पास की दुकानों और कच्चे मकानों के टीन-टप्पर उड़ने लगे थे। मंदिर के आंगन में खड़े पीपल के पत्ते सिक्कों की तरह बज रहे थे। थोड़ी ही देर में चारों ओर धुंध भर गयी और बड़ी-बड़ी बूंदें गिरने लगीं। फिर जो पानी बरसा तो लगा, जैसे आकाश को आज किसी ने बींध डाला है। मन्दिर के छज्जे के नीचे घड़ा रखकर उसने आकाश की ओर देखा। आधे आसमान पर चढ़कर तपने वाला सूरज गल-गलकर बह निकला था———तो आज उसकी कुल्फियां भी इसी तरह गल-गल कर बह जायेंगी———इस आशंका के साथ ही उसकी आंखों के कोर भीग गये थे और जल डूबी पुतलियों से वह भीगे आकाश में सूरज को ढूंढ़ने लगा था।

बिन मौसम की बरसात में भीगा आकाश आज दूसरे दिन भी एकदम साफ नहीं था। फिर भी हवा खुश्क थी—उसमें एक तरह की खनक आ गयी थी। कल उसका बड़ा नुकसान हो गया था। सांझ घिरते-घिरते पानी थमा था तब वह भीगे तन और भारी मन से घर पहुंचा था। सत्ती ने फुरती से कुल्फी की डिब्बियां भगोने में औंधा कर उसे चूल्हे पर चढ़ा दिया था। सोचा था, कुल्फी के घोल को पिलाकर ही बच्चों की भूख को बहला दिया जायेगा। पर थोड़ी-सी आंच लगते ही दूध फट गया था और वे दोनों फटी-फटी आंखों से आकाश में फटते हुए बादलों को देखते रह गये थे।

चूल्हा गरम करने की जुगत आज थी नहीं। री——री करते टेऊ के मुंह में अपनी ढलकी छाती को ठूंसकर उसे घास की पूली की तरह बगल में लटकाये आज सत्ती तड़के ही रिफ्यूजी कॉलोनी के उस नुक्कड़ की ओर चल पड़ी थी, जहां एक अधबना, टीन से ढका मकान अकेला खड़ा था।

"बुधो थो——टोपन की हालत अच्छी नहीं——वहीं जा रही हूँ।" देहरी पार करती हुई सत्ती की आवाज़ उसने सुनी थी। पहले तो उसे गुस्सा आया—चार चड्डियां और दो बड़े पैसे जो गिनने आये थे वही निकाल देती——उसने उसे टोकना चाहा पर उसके मुंह में नीम का दातून था। कड़वा मुंह पहले ही था। कड़वी बात कहकर सुबह-ही-सुबह जब वह रोजी पर निकलने

का मनसूबा बना रहा था, उसने टंटा करना ठीक नहीं समझा। फिर यह ख्याल भी तो था कि चाय की बेला है, अजब नहीं टेऊ को वहीं एक कप मिल जाये...... बीमारी का घर होने से भला कोई खाना-पीना बंद होता है ?

जब वह भागां के नन्हे-से पैर में से घुंघरू फँदा चांदी का तार निकाल रहा था, वह सुबह की मीठी नींद में मगन थी। एक बार वह तनिक कुनमुनायी पर मंद बयार के रेशमी बालों में मुंह छिपा कर फिर सो गयी। सामने खड़ी निहंग पहाड़ी से सूरज के सरकने के साथ ही उसने आज फिर कुल्फी का सामान जुटा लिया था। चीनी, दूध, बर्फ और नमक तो चांदी का तार रखने से मिल गये थे—जलाऊ लकड़ी की फिर उधार करनी पड़ी थी। दूध तो गरम करना ही है......चूल्हे के मरभुक्खे मुंह में लकड़ियां ठूंस-कर उसने नमक की हंडिया से लेकर आटे के रीते कनस्तर तक सब देख डाला पर माचिस न मिली। मिली तो ग्लेक्सो के उस डिब्बे में जो वह पिछले महीने किसी तरह टेऊ के लिए लाया था और जो अब खाली होने पर तैल लाने के काम आता था। माचिस का एक हिस्सा तेल में सन गया था—फिर भी उसने अंगूठे और उंगली की चिमटी से पकड़कर उसे निकाला। खोलकर जो देखा तो उसमें दो तीलियाँ थीं। पर मसाला एक के मुंह पर भी न था। झल्लाकर उसने खोखे को चूल्हें में डाल दिया।

दुलाना की देहरी चढ़ उसने अंगारों के लिए ठिकरी आगे बढ़ायी तो दो हाथ दुपट्टे को ठोडी तक खींचते हुए एक थकी हुई आवाज ने सवाल किया—"फेरी पर निकल रहे हो ? टोपन की सांस भटक गयी हैं। हालत अच्छी नहीं।" अंगारे की ठिकरी थामे एक मुरझाया हुआ गोरा हाथ आगे बढ़ा। उस पर उभरी नीली रगों से उसकी निगाह उलझ गयी, फिर ऊपर उठी और गन्दे दुपट्टे की बारीक जाली के पास में तैरती मरी-मरी-सी मछलियों से जा टकरायी। उन्हें देखकर उसे लगा कि टोपन अगर दम भी तोड़ दे तो अजब नहीं। अपने घर की चौखट तक पहुँचते-पहुँचते उसे कई बार खयाल आया—ऐसा हो गया तो ? ऐसा हो सकता है ? बेचारी बूढ़ी लीला का अकेला बेटा...... वह तो ठीक है......पर मैं जो यह सब जुटा चुका हूँ......चीनी तो पानी में घोल भी दी है...... टोपन गुजर गया तो......नहीं-नहीं, टोपन कट्ठा जवान है, यूं नहीं जाने का। दो दिन पहले तो ठीक था ही। उसने अंगारों के साथ ही नुकसान की आशंका को भी चूल्हे में झोंक दिया। सिलाई मशीन के आसपास पड़ी चिन्दियों को लपेटकर अंगारों पर धर दिया और फिर बुक्के-सा मुंह फुलाकर चूल्हा फूंकने लगा। थोड़ी ही देर में धुंआ बल खाता हुआ दीवार पर टिके टीन की ओर बढ़ने लगा। जोर की एक फूंक और मारी तो सारे घर में धुंआ भर गया। उसने आँखें बन्द कर

लीं। आंख जो खोली तो चूल्हे में से एक हल्की लपट उठती हुई दिखायी दी, वैसी ही उदास और मरी-मरी, जैसी गन्दे दुपट्टे की जाली में उलझी मछलियों सी आंखों में उसने देखी थी। उसने फिर जोर से चूल्हा फूंका। अब लपट ऊँची और तेज थी। दूध का भगोना चढ़ाते हुए उसने गांठ बांध ली थी कि दो चुल्लू दूध टेऊ के लिए बचाकर रखना है। तभी उसे पिघलते हुए बर्फ का ध्यान आया। अब वह उसे तप्पड़ में सहेज कर कूटने लगा। न जाने क्यों आज वह जोर-जोर से लट्ठा चला रहा था, जैसे कल कुल्फी के गल जाने की जोखिम इसी बर्फ ने दी थी। वह उठा, मिट्टी के घड़े को अच्छी तरह धोकर साफ किया, फिर गीला करके लाल कपड़ा उस पर चढ़ा दिया। घड़े में भरे ठण्डे पानी में नमक की डलियां छोड़कर चूल्हे पर से दूध उतार लिया और ठण्डा होने के लिए अलग रख दिया।

अब वह पहले से ही धोकर औंधी रखी छोटी-बड़ी टीन की डिब्बियों को सीधी करके लाइन में जमाने लगा। पांच पैसे वाली, दस वाली, बीस वाली, पचास वाली…… ? वह है कहाँ ? उसने साख के लिए सवा रुपए तक की रेट टीन की पट्टी पर लिखवा रखी है। वैसे भी आज तक किसी ने उससे बीस पैसे से अधिक की कुल्फी मांगी भी कब ?

दूध ठण्डा हो चुका था। उसने चीनी का घोल उसमें मिला दिया। घुटनों पर हाथ रखकर चट की आवाज के साथ उठा। मसाले की हंडिया में रखी इलायची के बूरे की पुड़िया लेकर उसने घोल में उलट दी। अब लाइन में रखी डिब्बियों में वह जल्दी-जल्दी घोल ढालने लगा। जब सब पूर गयीं तब उसे याद आया, बारकां खीर ?…… वीसरी वयो। उसके साथ आँखो में भूखे "टेऊ" की दुधमुंही सूरत तैर गयी। औंधा हत्थड़ सिर पर मारकर पास धरे साइकिल के ट्यूब के छल्ले डिब्बियों के सिरों पर चढ़ाने लगा। सब पर छल्ले चढ़ गए तो लाल-वाली पट्टियाँ धारे डिब्बियों के जमाव को देखकर उसे ऐसा लगा, जैसे टोपन के घर के बाहर सिर पर गमछे धारे कॉलोनी के लोग जमा हैं। मुंह बांधे इन्हीं की तरह। उसने अपने सिर को झटक दिया, जैसे इस विचार को अपने से झाड़कर अलग कर दिया कि टोपन मर भी सकता है। फिर एक-एक करके डिब्बियों को घड़े के पानी में छोड़ने लगा। डिब्बी के पानी में पैठने के साथ ही वह हिसाब लगाता जा रहा था कि कितने का माल बन गया है। माथे पर चुहचुहाये पसीने की बूंदों को उसने मुड़ी हुई तर्जनी पर समेटकर छिटक दिया।

—अगर शाम तक सब कुल्फियां निकल जायें तो भागां का तार छुड़ा लेने के बाद भी इतना बच रहेगा कि वह दो जून का आटा चावल जुटा सकेगा और गुजर जैसी लँगड़ाती चली आ रही है, चलती रहेगी। कुल्फी के घोल-सा सोंधा और इलायची की खुशबू में लिपटा एक सलोना विचार महक उठा-"मजा

तब है जब सत्ती को खबर तक न हो और चांदी का तार भामा के पैर में फिर से आ जाये। फिर उसकी झाड़ू-सी ठोड़ी पर उभरे तिल को सहलाते हुए बताए कि—इसके साथ ही सत्ती के चिट्टे बदन की लुनाई उसकी आंखों में उभर आयी और एक फुरहरी-सी उसके सूखे शरीर में लहरा गयी। कान में खुंसी अधजली बीड़ी को निकालकर होंठों में दबाया, फिर चिमटी में पकड़ी चिनगारी से उसे सुलगाकर उसने जोर का कश खींचा। दो-एक सूट्टे और मारे और कंधे पर रखे गमछे पर कुल्फी के घड़े को जमाकर वह उठने ही वाला था कि कॉलोनी के नुक्कड़ से बिलखता हुआ स्वर उठा और उसे छेदता हुआ पार निकल गया। कांपते हुए पगों पर खड़े होकर उसने बाहर झांका तो पूरी कॉलोनी उसे धुंध के कफन में लिपटी हुई दिखायी दी...तो टोपन गुज़र गया। सामने वाली दीवार पर टँगा हथेली पर पहाड़ टिकाये हनुमानजी का चित्र कांपने लगा। उसे लगा, पहाड़ का सारा बोझ उसके कंधे पर आ पड़ा है। अजब नहीं कि आगे बढ़ने पर वह जमीन से सट जाये। फिर भी बजरंगबली को याद करके एक झटके से उठा और देहरी पार कर गया। 'कु-लफी...मलाई !' एकाएक ही उसके मुँह से निकल पड़ा। उसने जीभ काटी। लानत है ऐसी आदत पर ! वह कुढ़ रहा था, मन-ही-मन।

"भाई...जेठू...ओ जेठूमल !" एक पहचानी हुई आवाज़ ने उसके बढ़ते हुए पैर को जकड़ लिया।

"टोपन गुजरी वयो...सुरतो वंजणो आह !" साइकिल पर पैर मारता हुआ भट्ट कह रहा था—राह में जाना है दूर होती हुई आवाज ने फिर कहा—फेरी छोड़ो।

कॉलोनी के नुक्कड़ से रोती हुई आवाज के धुएं का पहला गुबार उठा था तभी वह समझ गया था कि 'टोपन' नहीं रहा।...तुरन्त घर से निकल जाना चाहिए, किसी ने देखा तो है नहीं...यही सोचकर वह निकल पड़ा था, चुपचाप। यह बात और है कि आदतन उसके मुँह से टेर फूट पड़ी थी पर अब तो भट्ट ने भी कह दिया है—बच निकलने का कोई रास्ता नहीं। जात-बिरादरी का मामला ठहरा। इस विचार ने उसे घर की ओर बरबस मोड़ दिया। उसे लगा, जैसे उसके पैर बर्फ में धंसकर जम गये हैं। घर के कोने में घड़ा टिकाकर वह उठा तो लगा, उसका अंग-अंग टूटकर गिरने लगा है—जैसे कल उसकी जमी-जमाई कुल्फी गलकर बिखर गयी थी।

टोपन के घर के बाहर लोग जमा थे। आज कोई काम-धंधे पर नहीं निकला था। सबके चेहरे मौत की मार से लटके हुए थे। चारों तरफ चुप्पी चिपकी हुई थी। इशारों से काम हो रहे थे।

—

सामने उतूमल खड़ा था—पिटा-सा, जिसे उसने सुबह आलू-छोले उबालते हुए देखा था। उसके माथे पर उनके दिन भर पड़े रह जाने की फिकर धूल की तरह जमी हुई थी। बगल में दुलाना टूटकर टांगों पर बैठ गया था। उसका बासी सब्जी, पिलपिले टमाटर और मरे-मरे अमरूदों से अटा ठेला उसके दरवाजे पर खड़ा था। स्कूली बच्चों के टिफिन पहुंचाने वाला मूरजा बाएं खड़ा घुल रहा था। उसे लगा, जैसे मौत का दरिया 'टोपन' के बांध को तोड़कर कॉलोनी में घुस आया है, जिसमें सब लोग डिब्बियों में बन्द करके छोड़ दिये गए हैं। थोड़ी देर में सब जम जायेंगे और फिर गल-गलकर बह जायेंगे हमेशा-हमेशा के लिए।

हाथ बांधे सामने खड़े झूमरमल की घड़ी पर उसकी निगाह गयी तो पाया-सुई साढ़े दस से आगे निकल गयी थी। अगर बारह-एक बजे तक भी निपट जाये तो······मैंने बेकार ही फेरी पर निकलने की ठानी···उसे भी आज और इसी बेला मरना था। वह इसी उधेड़-बुन में था कि···"या को राम संग है" के मरे हुए स्वर ने उसे अरथी की ओर धकेल दिया। अर्थी उठ चुकी थी। रोने-पीटने की आवाज उसका पीछा कर थी। लोगों के कन्धों पर चढ़ा जवान टोपन आगे बढ़ रहा था। जब अरथी उसके घर के पास से गुजरी उसकी आंखों में कुल्फी का घड़ा तैर गया। वह थके पैरों से पीछे चलने लगा। चलते-चलते उसे अपना कंधा हल्का लगा, आगे चलने वाले लोगों को छितराकर उसने अरथी को कंधा लगा दिया। अब शव स्कूल के करीब आ गया था। "या को राम संग है···सत बोलो संग है···राम नाम संग है!" के समवेत स्वर को चीरती हुई अचानक ही एक टेर उठी—"कु-लही···मला!" ···लोग चौंके। पीछे चलते हुए आदमी ने आगे बढ़कर अरथी से उसके हाथ को झटककर उसे पीछे धकेल दिया और बोला—लख लानत भेंणा··· सब उसे घूरकर देख रहे थे।

—"परायी प्यास का सफ़र" से

अभ्यास-प्रश्न

1. "उसे लगा था कि जैसे किसी बस्ती को डिबिया में बन्द करके उमस और धुंधलके में छोड़ दिया था।"
   जेठूमल को ऐसा क्यों लग रहा था?
2. सड़क की तपन भी जेठूमल को राहत क्यों पहुंचा रही थी?
3. "मन्दिर के आंगन में खड़े पीपल के पत्ते सिक्कों की तरह बज रहे थे।"
   लेखक ने पीपल के पत्तों से सिक्कों की आवाज निकालने का प्रयास क्यों किया है?

4. "आधे आसमान पर चढ़कर तपने वाला सूरज गल-गलकर बह निकला था।" इस कथन के अपने सम्बन्ध में विचार लिखिए।
5. "थोड़ी सी आँच लगते ही दूध फट गया था और वे दोनों फटी-फटी आखों से आकाश में फटने हुए बादलों को देखते रह गए थे।" दूध फटने पर जेठूमल तथा सत्ती के अत्यधिक दुखी होने का क्या कारण था ?
6. "उसे लगा, जैसे मौत का दरिया "टोपन" के बांध को तोड़कर कॉलोनी में घुस आया है, जिसमें सब लोग डिब्बियों में बंद करके छोड़ दिये गए हैं।"
   टोपन की मौत का सारी बस्ती पर क्या प्रभाव पड़ा ? लिखिए।
7. टोपन की अरथी को कंधा देते हुए जेठूमल के मुंह से "कुल-ही मलाई" की आवाज क्यों निकली ? सबने उसकी ओर घृणा से क्यों देखा ?
8. "डॉ. आलम शाह की इस कहानी में उपेक्षित तथा उत्पीड़ित लोगों के जीवन का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है।" इस कथन पर अपने विचार लिखिए।
9. "भूखे मनुष्य की करुणा समाप्त हो जाती है।" इस कहानी के आधार पर नीतिकारों के उक्त कथन की पुष्टि कीजिए।
10. "घुटनों पर हाथ रखकर चट की आवाज के साथ उठा" इस पंक्ति से कौनसा भाव व्यक्त होता है—
    (1) शीघ्रता का (2) साधारण व्यवहार का
    (3) पोषण की कमी का (4) बीमार होने का ( )
11. निम्नलिखित में से किस शब्द की वर्तनी सर्वाधिक शुद्ध है ?
    (1) डिब्बियों में (2) डिबियों में
    (3) डीबियों में (4) डीब्बीयों में ( )

सूरदास

जन्म : सन् 1478 ई.

मृत्यु : लगभग सन् 1563 ई.

कवि परिचय—

सूरदास हिन्दी की कृष्ण काव्य परम्परा के कवि हैं। उनका जन्म स्थान दिल्ली के निकट सीही ग्राम था। बचपन से ही विरक्त होकर सूरदास मथुरा के पास गऊघाट पर रहने लगे। वहीं महाप्रभु ने वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित किया

और भगवान के लीला रहस्य से परिचित कराया। महाप्रभु के देहान्त के उपरान्त उनके पुत्र बिट्ठलनाथ ने "अष्टछाप" नाम से भक्तों की एक मण्डली बनाई, जिसमें उन्होंने चार महाप्रभु के और चार अपने शिष्यों को सम्मिलित किया। सूरदास को "अष्टछाप" में प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ।

सूरदास अन्धे थे। पर जन्मान्ध थे या बाद में अन्धे हुए, यह निश्चित नहीं है। प्राकृतिक दृश्यों तथा रंगरूप आदि का जो चित्रण उन्होंने किया है उसे देख कुछ विद्वान उन्हें जन्मान्ध नहीं मानते।

काव्यगत विशेषताएं—

सूरदास के काव्य का प्रमुख विषय वात्सल्य, श्रृंगार एवं भक्ति है। इन विषयों के वे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वात्सल्य का जैसा चित्रण सूरदास ने किया है, वैसा विश्व साहित्य में भी नहीं हुआ। अन्धे होने पर भी उन्होंने बालकों की चेष्टाओं और क्रीड़ाओं का स्वाभाविक वर्णन किया है। माता के स्नेहपूर्ण हृदय का चित्रण भी बड़ी भावुकता के साथ किया गया है।

सूर ने प्रेम एवं सौन्दर्य का भी प्रभावशाली वर्णन किया है। श्रृंगार के संयोग और बियोग दोनों पक्षों का वर्णन सूर ने विशद रूप से किया है।

भक्त कवियों में सूरदास का बहुत ऊंचा स्थान है। उनके भक्ति और विनय के पद सरल और भावपूर्ण हैं। सूर की भाषा ब्रजभाषा है। वह सरल, प्रवाहपूर्ण और भावों के अनुकूल है। सूर ने ब्रजभाषा को सबसे पहले साहित्यिक रूप दिया। उन्होंने गीत-काव्य की रचना की। सूर सागर के पदों में अनेक रागिनियों का प्रयोग हुआ है। इसी कारण सूर के पद संगीतकारों में भी लोकप्रिय हैं।

पाठ परिचय—

ये पद भक्त शिरोमणि सूरदासजी के भ्रमर गीत से लिए गए हैं। प्रथम पद में गोपियां उद्धव से निर्गुण का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए कुछ प्रश्न पूछ रही हैं। निर्गुण के माता, पिता, पत्नी तथा दासी का नाम जानना चाहती हैं। इन प्रश्नों का उत्तर देने में उद्धव असमर्थ रहता है। गोपियों की सहज भक्ति के सामने उद्धव का पाण्डित्य टिक नहीं पाता है।

दूसरे पद में गोपियों ने मथुरा को काजल की कोठरी बताया है। मथुरा से आने वाला प्रत्येक व्यक्ति काला है। अक्रूर जी काले हैं, उद्धव काले हैं तथा भंवरे भी काले हैं। ऐसा लगता है कि सबको नील के घड़े से निकाल कर यमुना में डुबाया गया है। इसीलिए यमुना भी काली हो गई है।

तृतीय पद में ज्ञान तथा योग का उपदेश देने वाले उद्धव को गोपियों ने बड़ा व्यापारी बताया है। वे कहती हैं कि यह व्यापारी कहां हुआ अच्छा लेकर

सोना मांगता है । अमृत छोड़कर खारा पानी पीने के लिए कह रहा है । हे उद्धव यह गांठ उठाकर ले जाओ । हम तो श्रीकृष्ण का दर्शन करना चाहती हैं ।

चतुर्थ पद मे कृष्ण ब्रजभूमि के प्रति अपना सहज श्रद्धाभाव प्रकट कर रहे हैं । वे बाबा नंद तथा माता यशोदा के सहज स्नेह का स्मरण करते हुए कहते हैं कि मैं ब्रजमण्डल के प्रेम को कभी नहीं भूल सकता ।

□ □ □

निरगुन कौन देस को बासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दे, बूझति सांचि न हांसी ।
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि को दासी ?
कैसो बरन भेष है कैसो किहि रस में अभिलासी ?
पावेगो पुनि कियो आपनो जो रे करेगो गांसी ।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी ।।

बिलग जनि मानो ऊधो प्यारे ।
वह मथुरा काजर की कोठरि, जे आवै ते कारे ।
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे कुटिल भंवारे ।
कमलनयन की कौन चलावै, सबहिनि में मनियारे ।
मानो नील माट तै काढ़े, जमुना आइ पखारे ।
तातै स्याम भई कालिंदी, सूर स्याम गुन न्यारे ।।

आयो घोष बड़ो ब्यौपारी ।
खेप लाद गुण ज्ञान जोग की, ब्रज में आनि उतारी ।
फाटक दे के हाटक मांगत, भोरो निपट सुधारी ।
धुरही तै खोटो खायो है, लिए फिरत सिर भारी ।
इनके कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन अनारी ।
अपनो दूध छांड़ि को पीवै, खार कूप को बारी ।
ऊधो जाहु सवारै ह्यां तै, बेगि गहरु जनि लावहु ।
मुख मांगौ पैहौ सूरज प्रभु, साहुहिं आनि दिखावहु ।।

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
बृन्दावन गोकुल बन उपवन, सघन कुंज की छाहीं ।
प्रात समय माता जसुमति अरु, नन्द देखि सुख पावत ।
माखन रोटी दह्यो सजायो, अति हित सहित खवावत ।
गोपी ग्वाल बाल संग खेलत, सब दिन हंसत सिरात ।
सूरदास धनि-धनि ब्रजवासी, जिनसौं हित जदुनाथ ।।

(भ्रमर गीत)

अभ्यास-प्रश्न

1. "सुनत मौन ह्वे रह्यो ठग्यो सो"
   गोपियों के सहज प्रश्न सुनकर उद्धव मौन क्यों हो गए ? स्पष्ट कीजिए।
2. गोपियों ने मथुरा को काजल की कोठरी क्यों कहा है ?
3. गोपियों ने यमुना का श्याम रंग होने का क्या कारण बतलाया है ?
4. "फाटक देकर हाटक मांगत"
   इस कथन का भाव स्पष्ट कीजिए।
5. "धुर ही ते खोटो खायो है"
   गोपियों ने यह बात किस आधार पर कही है ?
6. गोपियों ने कृष्ण के प्रति अपने अनन्य प्रेम को किस पंक्ति में प्रकट किया है ?
7. कृष्ण ब्रजभूमि को क्यों नहीं भूल पा रहे हैं ?
8. कृष्ण बाबा नन्द तथा माता यशोदा के सहज स्नेह को बार बार याद क्यों कर रहे हैं ?
9. सूरदासजी ने ब्रजवासियों के भाग्य की सराहना क्यों की है ?
10. "सूरदास जी ने भ्रमर गीत में सगुण भक्ति का महत्व प्रतिपादित किया है।" उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
11. "आयो घोष बड़ो व्यौपारी"
    इस पंक्ति से कौनसा भाव व्यक्त हो रहा है—
    (1) व्यंग्य (2) भक्ति
    (3) शृंगार (4) विरक्ति ( )
12. "किहिं रस में अभिलासी"
    इस पंक्ति में रस शब्द का प्रासंगिक आशय क्या होता है ?
    (1) नवरस (2) षट् रस
    (3) रुचि (4) भावना ( )

तुलसीदास

जन्म : सन् 1532 ई.

मृत्यु : सन् 1623 ई.

कवि-परिचय

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने गए हैं। विश्व के श्रेष्ठ कवियों में उनकी गिनती की जाती है। तुलसी के माता-पिता का निधन, अल्पायु...

उनके बचपन में ही हो गया था। नरहरिदास नामक महात्मा ने उनका पालन-पोषण किया और उन्हें राम-कथा से परिचित कराया। उनकी पत्नी का नाम रत्नावली कहा गया है। कहा जाता है कि अपनी पत्नी के प्रति उनकी बहुत आसक्ति थी और उसी की फटकार से उनका सांसारिक प्रेम राम-भक्ति में परिवर्तित हो गया। गृहस्थाश्रम त्याग कर वे साधु बन गये और उन्होंने दूर-दूर तक भ्रमण किया। उनका अध्ययन विस्तृत और गहन था। जीवन के अन्तिम दिनों में वे काशी में थे जहां उनका देहावसान हुआ।

रामचरितमानस तुलसी का सबसे प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह महाकाव्य अवधी भाषा में और मुख्यतः दोहा-चौपाई छन्दों में लिखा गया है। भारत के करोड़ों घरों में यह महाकाव्य धर्म ग्रन्थ के रूप में पूजा और पढ़ा जाता है। यह ज्ञान, भक्ति, नीति, कर्मयोग आदि सभी का अमूल्य भण्डार है।

काव्यगत विशेषताएं—

तुलसीदास भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं। उत्तर भारत की जनता पर उनका भारी प्रभाव है। वे समन्वयवादी थे। समाज, धर्म, साहित्य, भाषा सभी क्षेत्रों में उन्होंने विरोधी तत्वों का समन्वय करने का प्रयत्न किया। राम के अनन्य भक्त होते हुए भी उन्होंने शिव, शक्ति, गणेश, सरस्वती, हनुमान, भैरव आदि सबकी स्तुति की। उन्होंने ज्ञान और भक्ति का भी समन्वय किया।

तुलसी का ब्रज एवं अवधी, दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। दोनों में उन्होंने समान सफलता के साथ रचना की है। रामचरितमानस, बरवै रामायण आदि की भाषा अवधी है और कवितावली, गीतावली तथा विनय-पत्रिका की भाषा ब्रज है। भाषा की सरलता और गम्भीरता, विषय के अनुकूल है। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों के अतिरिक्त अरबी, फारसी एवं बुन्देलखण्डी आदि के शब्दों का भी प्रयोग किया है। उन्होंने वीर-गाथा काल की छप्पय पद्धति, विद्यापति एवं सूर की गीत पद्धति, भाटों आदि की कवित्त सवैया पद्धति, कबीर आदि की दोहा पद्धति और सूफियों की दोहा-चौपाई पद्धति आदि सभी का प्रयोग किया। उनके काव्य में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

उन्हें प्राप्त कर हिन्दी गौरवान्वित हुई है।

पाठ-परिचय—

कवितावली से उद्धृत इन दो पद्यांशों में वन-मार्ग पर आगे बढ़ते हुए राम, लक्ष्मण तथा सीता का मनोहारी वर्णन है। ग्राम वधुएं सीताजी से पूछती हैं कि ये सांवरे से तुम्हारे क्या लगते हैं? इसका उत्तर सीता सहज मुस्कान से देती हैं। इस अलौकिक दृश्य को देखकर ग्राम वधुएं अत्यधिक आनन्द प्राप्त करती हैं। यह उनके लिए एक अलौकिक अवसर है। तुलसीदासजी ने कहा है—

"अनुराग तड़ाग में भानु उदै
विगसी मनो मंजुल कंज कली"

बिनय-पत्रिका से उद्‌धृत प्रथम पद में मोह के बंधन का वर्णन है। बाहर से अनेक प्रयत्न करने पर भी भीतर की गांठ नहीं खुलती है। तुलसीदास जी ने घी से भरे हुए कढ़ाह में दिखने वाले चांद के प्रतिबिम्ब, पेड़ पर बैठे हुए पक्षी तथा बिल में बैठे हुए सांप के उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया है कि बाहरी प्रयत्न से इनको मिटाना सम्भव नहीं है। घी को औंटाने से प्रतिबिम्ब नष्ट नहीं होता, पेड़ को काटने से पक्षी नहीं मरता, तथा बिल को कूटने से सांप नहीं मरता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि परमात्मा तथा गुरु की करुणा के बिना विवेक प्राप्त नहीं होता है। विवेक के अभाव में संसार-सागर को पार करना कठिन है।

द्वितीय पद में गोस्वामी जी ने राम तथा सीता से विमुख व्यक्तियों को छोड़ने का उपदेश दिया है। वे कहते हैं कि हमारा परम प्रिय व्यक्ति वही है जो राम को अपना मानता है। सांसारिक सम्बन्धों को त्यागकर राम के चरणों में स्वयं को समर्पित करने वाले प्रहलाद, भरत, विभीषण, बलि तथा ब्रज बनिताओं का कल्याण ही हुआ है। जिनके साथ रहने से हमारा मन राम की भक्ति में लगता है वे ही हमारे सच्चे साथी हैं। राम की भक्ति से बिहीन व्यक्ति हमारे किसी काम का नहीं है।

□ □ □

सीस जटा उर बाहु बिसाल
विलोचन लाल तिरीछी सी भौंहे।
तून सरासन बान धरे,
तुलसी वन मारग में सुठि सौंहे।
सादर बारहिबार सुभाय
चिते तुम त्यो हमरो मन मोहे।
बूझति ग्रामवधू सिय सौं
कहो, सांवरे से सखि रावरे को हैं ?
सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने,
सयानी है जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हे
समुझाइ कछू मुसकाइ चली।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै
अवलोकनि लोचन लाहु अली।

अनुराग तड़ाग में भानु उदै
बिगसीं मनो मंजुल कंज कली।

(कबितावली)

☐ ☐ ☐

माधव ! मोह फांस क्यों टूटै।
बाहिर कोटि उपाय करिय अभ्यन्तर ग्रन्थि न छूटै।
घृत पूरन कराह अंतरगत ससि प्रतिबिम्ब दिखावै।
ईंधन अनल लगाय कलप सत औटत नास न पावै।
तरु कोटर महं बस विहंग तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करिय विचारहीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे।
अंतर मलिन विषय मन अति, तन पावन करिय पखारे।
मरइ न उरग अनेक जतन बल्मीकि बिबिध बिधि मारे।
तुलसीदास हरि-गुरु-करुणा बिनु बिमल विवेक न होई।
बिनु बिबेक संसार-घोर-निधि पार न पावै कोई।

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन्हि भये मुद मंगलकारी।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अंजन कहा आंखि जेहि फूटे बहुतक कहउँ कहां लौं।
तुलसी सो सब भांति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासो होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो।

(विनय-पत्रिका)

अभ्यास प्रश्न

1. "सादर बारहिबार सुभाय चिते तुमत्यो हमरो मन मोहे"
   इस पंक्ति का भाव स्पष्ट कीजिए।
2. ग्रामवधुओं के वचन को "सुधारस साने" क्यों कहा है ?
3. "अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसी मनोमंजुल कंज कली"
   इस पंक्ति की व्याख्या कीजिए।
4. "आभ्यंतर" ग्रन्थि से कवि का क्या आशय है ?
5. चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब तथा बिल में छिपे हुए सांप का उदाहरण देकर गोस्वामी जी क्या कहना चाहते हैं ?

6. विवेक की प्राप्ति के लिए तुलसीदास जी ने भगवान तथा गुरु की करुणा को आवश्यक क्यों माना है ? स्पष्ट कीजिए।
7. संसार रूपी सागर को विवेक के बल पर किस प्रकार पार किया जा सकता है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
8. राम तथा सीता से विमुख व्यक्तियों को तुलसीदासजी ने शत्रु मानकर छोड़ने के लिए क्यों कहा है ?
9. सांसारिक सम्बन्धों को छोड़कर राम की भक्ति में स्वयं को लगाने वालों का सदैव भला ही हुआ है। इस कथन को उदाहरण देकर समझाइए।
10. "बूझति ग्रामवधू" इस प्रयोग में बूझति शब्द का क्या आशय है—
(1) बुझती है। (2) पूछती है।
(3) समझती है। (4) कहती है। ( )
11. "अभ्यन्तर" शब्द का सर्वाधिक शुद्ध विच्छेद क्या होता है ?
(1) आभ्य+अन्तर (2) अभि+अन्तर
(3) आभ्या+अन्तर (4) अभी+अन्तर ( )

बिहारी

जन्म : 1595 ई.
मृत्यु : 1664 ई.

कवि-परिचय

बिहारी का जन्म ग्वालियर के समीप बसुआ गोविन्दपुर में हुआ था। वे माथुर चौबे जाति के थे। उनके पिता का नाम केशवराय था। वे जयपुर नरेश मिर्जा राजा जयसिंह के आश्रय में रहते थे। कहा जाता है कि राजा जयसिंह अपनी एक नवविवाहित पत्नी के प्रेम में इतने लीन हो गये थे कि उन्होंने राज्य का कार्य तक छोड़ दिया था। बिहारी ने "नहिं पराग नहिं मधुर— —" वाला दोहा लिखकर उनके पास भिजवाया जिससे उनकी मोह-निद्रा टूट गयी और पहले की भांति राज्य कार्य सम्हालने लगे। इस दोहे पर प्रसन्न होकर बाद में राजा ने उन्हें प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी पुरस्कार स्वरूप दी थी। राजा जयसिंह के आदेश पर ही उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "बिहारी सतसई" की रचना की थी।

काव्यगत-विशेषताएं

"बिहारी सतसई" मुक्तक काव्य रचना है। उसमें श्रृंगार, भक्ति, नीति आदि विषयों के मुक्तक दोहे हैं। बिहारी का मुख्य विषय श्रृंगार है। "बिहारी

सतसई" को साहित्य जगत में बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई। उस पर 50 से भी अधिक टीकाएं लिखी गई। संस्कृत, फारसी, उर्दू आदि में उनके भाषान्तर हुए।

बिहारी ने नीति और भक्ति के दोहे भी लिखे हैं। उनकी नीति के दोहे बड़े प्रभावशाली हुए हैं। भक्ति सम्बन्धी दोहों में भी भक्त की आत्मा का स्वर सुनाई पड़ता है, यद्यपि बिहारी भक्त नहीं थे। प्रकृति वर्णन के दोहे भी बिहारी ने लिखे हैं। वे भी महत्वपूर्ण बन पड़े हैं।

बिहारी ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा चुस्त, शब्द नपे-तुले सशक्त एवं सार्थक हैं। कहीं-कहीं उर्दू, फारसी और बुन्देलखण्डी के शब्दों के प्रयोग भी हुए हैं। बिहारी हिन्दी के श्रेष्ठ शृंगारी कवि हैं।

पाठ-परिचय :

बिहारी सतसई में भक्ति, नीति तथा शृंगार की त्रिवेणी के दर्शन होते हैं। इस पाठ में भक्ति से सम्बद्ध संकलित दोहों में राधा की भक्ति कृष्ण के मनोहर रूप तथा भक्त के मन का चित्रण है। प्रथम दोहे में बिहारी राधा की वन्दना करते हुए कहते हैं कि कृष्ण को प्रसन्न करने वाली राधा उनके सांसारिक कष्टों को दूर करें।

दूसरे दोहे में कृष्ण की मुरली का मन-मोहक चित्रण है। हरे बांस की बांसुरी विविध रंगों के योग से इन्द्रधनुष सी दिखाई दे रही है।

तीसरे दोहे में भक्त के प्रेमी मन का चित्र है जो कृष्ण के रंग में डूबकर उज्ज्वल हो रहा है।

चौथे दोहे में कृष्ण के मनोहर रूप का चित्रण है जिसे बिहारी अपने मन-मन्दिर में बसाना चाहते हैं।

शृंगार रस से सम्बद्ध प्रथम दोहे में नायिका के सौन्दर्य का वर्णन है। यह दोहा बिहारी का प्रसिद्ध दोहा कहलाता है। इसके आधार पर ही उनको राजा जयसिंह ने राजकवि का पद दिया था। दूसरे दोहे में कृष्ण की मुरली छिपाने वाली गोपियों का वर्णन है जो बात का रस प्राप्त करने के लिए मुरली छिपाती हैं। बार-बार देने के लिए कहती हैं और अन्त में मना कर देती हैं।

तीसरे दोहे में नायिका के अलौकिक रूप का वर्णन है। उसके पास पड़ौसी में तिथि का पता पंचांग से ही लगता है। वह इतनी सुन्दर है कि उसके रूप के कारण वहां पूर्णिमा ही रहती है।

नीति से सम्बद्ध प्रथम दोहे में ईश्वर द्वारा प्रदत्त सुख-दुःख को समान रूप से स्वीकार करने की प्रेरणा दी है। दूसरे दोहे में यह बतलाया है कि सम्पत्ति रूपी जल के बढ़ने के साथ-साथ मन रूपी कमल बढ़ जाता है। सम्पत्ति रूपी जल

के कम होने पर यह कमल मुरझा जाता है पर नीचे नहीं आता। एक बार जो स्तर बन जाता है उसको नीचे लाना कठिन है।

तीसरे दोहे में कवि ने सन्तुष्ट रहने की प्रेरणा दी है। दूसरों के पास जितने भी साधन और सुविधाएं हैं वे हमारे काम की नहीं हैं। हमको जो कुछ ईश्वर ने दिया है वही हमारे लिए पर्याप्त है।

बिहारी ने दोहे जैसे छोटे से छन्द में अनेक भाव भर दिए हैं। इसीलिए यह कहा जाता है कि बिहारी ने गागर में सागर भर दिया है।

□ □ □

भक्ति

मेरी भव-बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांई परे, स्याम हरित दुति होइ।
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठि पट जोति।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्रधनुष सी होति।
या अनुरागी चित्त की, गति समुझे नहीं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़े स्याम-रंग, त्यों-त्यो उज्ज्वल होय।
सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
एहि बानिक मो मन बसो, सदा बिहारी लाल।

□ □

श्रृंगार

नहि पराग नहि मधुर मधु नहि बिकास यहि काल।
अली कली ही सो बंध्यो, आगे कौन हवाल।
बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे, भौंहनि हंसे, देन कहे नट जाय।
पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर के चहुं पास।
निसि दिन पून्यो ही रहे, आनन ओप उजास।

□ □

नीति

दियो सुसीस चढ़ाइले, आछी भांति अएरि।
जासो सुख चाहत लियो, ता के दुखहि न फेरि।
बढ़त-बढ़त सम्पति सलिल मन सरोज बढ़ि जात।

घटत-घटत पुनि ना घटे, वरु समूल कुम्हलात ।
अति अगाध, अति ओथरो, नदी कूप सर बाय ।
सो ताको सागर जहां, जाकी प्यास बुझाय ।

(बिहारी सतसई)

अभ्यास-प्रश्न

1. "जा तन की झांई परे स्याम हरित दुति होय" इस पंक्ति का भाव स्पष्ट कीजिए ।
2. हरे बांस की बांसुरी इन्द्रधनुष के समान क्यों दिखाई देती है ?
3. बिहारी ने प्रेमी मन की गति को विचित्र क्यों कहा है ?
4. बिहारी अपने मन में कृष्ण के किस रूप को बसाना चाहते हैं ?
5. नायिका के घर के पास तिथि का पता लगाना कठिन क्यों है ?
6. "अली कली ही सो बंध्यो"
   इस कथन का भाव स्पष्ट कीजिए ।
7. "बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय"
   इस पंक्ति का भाव स्पष्ट कीजिए ।
8. बिहारी ने सुख-दुःख को समान रूप से सहन करने की बात क्यों कही है ?
9. "वरू समूल कुम्हलाय"
   इस अंश का भाव स्पष्ट कीजिए ।
10. "सो ताको सागर जहां जाकी प्यास बुझाय"
    इस पंक्ति के मूल भाव को स्पष्ट करते हुए सन्तोष की महिमा बताइए ।
11. बिहारी के दोहों में भक्ति, नीति तथा शृंगार का अपूर्व समन्वय है। उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए ।
12. "राधा नागरी" प्रयोग में नागरी शब्द का सही आशय क्या होगा ?
    (1) नगर वाली (2) चतुर
    (3) नागवंशी (4) नागरिपु ( )
13. "ज्यों-ज्यों बूड़त स्याम रंग
    त्यों-त्यों उज्ज्वल होय"
    इस पंक्ति में कौनसा भाव व्यक्त हो रहा है ?
    (1) परस्पर विरोध का (2) सन्देह का
    (3) आश्चर्य का (4) भक्ति का ( )

मैथिलीशरण गुप्त

जन्म 1886 ई.
मृत्यु 1964 ई.

कवि-परिचय :

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म चिरगाँव, जिला झाँसी में हुआ। नवम कक्षा तक की स्कूली शिक्षा के बाद उनका सारा अध्ययन घर ही पर स्वाध्याय द्वारा हुआ। 'सरस्वती' के सम्पादक महावीर प्रसाद की अंगुली पकड़ कर ये काव्य-क्षेत्र में उतरे। गुप्तजी की कविताओं में राष्ट्रीय भावना चरम विकास पर पहुंची। उन्हें 'भारत-भारती' काव्य से बहुत अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। भारत-भारती की पंक्तियां तब के हिन्दी-भाषी क्षेत्र के शिक्षित जनों को कण्ठस्थ थीं। कविता से जन-जागरण का काम यदि किसी ने सबसे अधिक सफलता के साथ किया तो गुप्तजी ने। वस्तुतः गुप्तजी, राष्ट्रकवि इसी कृति के कारण कहलाये।

गुप्तजी की कविताओं से खड़ी बोली हिन्दी को काव्य-भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित होने में अभूतपूर्व सफलता मिली। उन्होंने अपने युग के भाव-बोध को समग्रता में ग्रहण करके उसे चित्रित किया है। आधुनिक हिन्दी-काव्य में वैष्णव उदारता के वे प्रतिनिधि हैं। भारत के सभी धार्मिक मतों एवं विश्वासों का समाहार उनकी काव्य-भावना में हो गया है।

हिन्दी के कवियों में सर्वाधिक प्रबन्ध काव्य गुप्तजी ने ही लिखे। उनकी वास्तविक काव्य-प्रतिभा प्रबन्ध काव्यों में दिखाई पड़ती है। गुप्तजी के प्रबन्ध काव्य अधिकांशतः पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथानक पर आधारित हैं। उनके प्रमुख प्रबन्ध काव्य इस प्रकार हैं : साकेत, यशोधरा, विकट भट, रंग में भंग, गुरुकुल, किसान, सिद्धराज, जयद्रथ-वध और पंचवटी।

गुप्तजी ने उपेक्षित नारी-जीवन के प्रति करुणा एवं सहानुभूति जागृत कर उसे जनमानस में प्रतिष्ठित किया। चिर-उपेक्षिता कैकेयी, उर्मिला और यशोधरा को अपने प्रबन्ध-काव्यों की नायिकाएं बना कर उन्होंने उनके चरित्र को भव्यतर एवं उज्ज्वलतर बनाया। नारी-भावना को पहचानने और उसका चित्रण करने में गुप्तजी हिन्दी-काव्य के इतिहास में बेजोड़ है। नारी-पात्रों पर स्थितियों का जो प्रभाव पड़ता है, उसका चित्रण गुप्तजी अचूक स्वाभाविकता एवं मनोवैज्ञानिकता के साथ करते हैं। उनके नारी-पात्र स्वाभिमानी, देशभक्त, कर्त्तव्य परायण होकर अपनी निजी वेदना खो नहीं देते। साकेत की 'उर्मिला' और यशोधरा की 'गोपा' इस दृष्टि से बहुत जटिल किन्तु स्वाभाविक और आधुनिक पात्र हैं।

गुप्तजी ने मुक्तक भी कम नहीं लिखे हैं। उनके मुक्तक काव्यों में प्रधान हैं : भारत-भारती, पद्य-प्रबन्ध, वैतालिक, स्वदेश-संगीत, वन-वैभव, मंगल घट, प्रदक्षिणा, कुणाल-गीत, अर्जन और विसर्जन, जय भारत आदि। उन्होंने बहुत से अनुवाद भी किये हैं जिनमें 'मेघनाद-वध' बहुत महत्वपूर्ण है।

गुप्तजी का समग्र काव्य प्रसाद-गुण-युक्त है और सामान्य जन के लिए भी वह गरिष्ट नहीं है। खड़ी बोली को काव्योपयोगी बनाने तथा उसे राष्ट्र-भाषा का गरिमामय पद दिलाने का सर्वाधिक श्रेय गुप्तजी को है।

प्रस्तुत कविताएं

प्रथम कविता 'दोनों ओर प्रेम पलता है' कवि के प्रबन्ध काव्य 'साकेत' से ली गई है। उर्मिला के विरह-वर्णन प्रसंग का यह गीत अपनी स्वाभाविकता एवं मर्मस्पर्शिता में अद्वितीय है और इसे गुप्तजी की प्रतिनिधि रचना माना गया है। दूसरी रचना 'रे मन, आज परीक्षा तेरी' 'यशोधरा' खण्ड काव्य से उद्धृत हुई है। बुद्ध ने यशोधरा को सोती छोड़कर घर से निष्क्रमण किया था मोक्ष-प्राप्ति के लिए, जिसे यशोधरा ने अपना अपमान समझा। आज जब बुद्ध नगर में आये हैं सिद्धार्थ होकर, तो नगर के नर-नारी उनके दर्शन के लिए जा रहे हैं। पर स्वाभिमानिनी यशोधरा क्यों जाये उनके पास? वे कौनसे पूछ कर गये थे? तब यशोधरा के मानस में जो ऊहापोह हुई उसकी सुन्दर व्यंजना इस गीत में हुई है। स्वयं न जाने का निर्णय कर यशोधरा ने अपने स्वाभिमान की रक्षा की है।

□ □ □

दोनों ओर प्रेम पलता है !

सखि, पंतग भी जलता है,
हा, दीपक भी जलता है !

दीपक के जलने में आली,
फिर भी है जीवन की लाली,
किन्तु पंतग भाग्य-लिपि काली,
किसका वश चलता है ?

शीश हिला कर दीपक कहता—
बन्धु वृथा ही तू क्यों दहता ?
पर पंतग पड़ कर ही रहता,
कितनी विह्वलता है !

बच कर हाथ पतंग मरे क्या ?
प्रणय छोड़ कर प्राण धरे क्या ?
जला नहीं, तो मरा करे क्या ?
कितनी परवशता है !

जगती वणिक-वृत्ति है रखती,
जिसे चाहती उसको चखती,
काम नहीं, परिणाम निरखती
मुझे यही खलता है !
दोनों ओर प्रेम पलता है !

—'साकेत' से

□ □

रे मन आज परीक्षा तेरी !

विनती करती हूँ मैं तुझसे
बात न बिगड़े मेरी !
अब तक जो तेरा निग्रह था,
बस अभाव के कारण वह था ।
लोभ न था, जब लाभ न यह था,
सुन अब स्वागत-भेरी—
रे मन, आज परीक्षा तेरी !

दो पग आगे ही वह धन है,
अवलम्बित जिस पर जीवन है,
पर क्या पथ पाता यह जन है,
मैं हूँ और अंधेरी ।
रे मन आज परीक्षा तेरी !

यदि वे चल आये हैं इतना,
तो दो पग उनको हैं कितना ?
क्या भारी वह मुझको जितना ?
पीठ उन्होंने फेरी !
रे मन आज परीक्षा तेरी !

सब अपना सौभाग्य मनावें,
दरस, परस, निःश्रेयस पावें,
उद्धारक चाहें तो आवें,
यहीं रहे यह चेरी !
रे मन आज परीक्षा तेरी !

—'यशोधरा' से

अभ्यास-प्रश्न

1. 'दोनो ओर प्रेम पलता है' कविता में कौन पतंगा है और कौन दीपक ?
2. कवि ने पतंगे की भाग्य-लिपि को 'काली' क्यों बताया है ?
3. पतंगे को परवशता के भाव की अनुभूति क्यों हो रही है ?
4. संसार की वह कौनसी 'वणिक-वृत्ति' है जो यशोधरा को खलती है ?
5. "क्या भारी वह मुझको जितना ?" कथन के प्रकाश में बताइये कि बुद्ध से मिलने जाना यशोधरा के लिए भारी क्यों हो रहा है ?
6. यशोधरा ने अपने आत्म-सम्मान की रक्षा किस प्रकार की ?
7. आज का दिन यशोधरा के लिए परीक्षा की घड़ी क्यों बन गया है ?
8. 'दोनों ओर प्रेम पलता है' कविता का मूल भाव स्पष्ट कीजिए ।
9. "गुप्तजी के दोनों गीत अत्यन्त सरस और सरल हैं ।" इस उक्ति की सार्थकता सिद्ध कीजिए ।
10. "विह्वलता" और "परवशता" शब्दों का अर्थ-भेद स्पष्ट कीजिए ।
11. किस शब्द में निःउपसर्ग का प्रयोग नहीं हुआ है ?
    (1) निराकार (2) निस्वार्थ
    (3) निश्चल (4) नियुक्त ( )
12. "रे मन आज परीक्षा तेरी"
    कविता में निःश्रेयस शब्द का प्रासंगिक आशय क्या है ?
    (1) बिना लाभ के (2) बिना स्वार्थ के
    (3) बिना धन के (4) बिना लोभ के ( )

—·—

जय शंकर प्रसाद

जन्म 1889 ई.
मृत्यु 1937 ई.

कवि-परिचय :

प्रसाद जी का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित व्यापारी परिवार में हुआ। पिता की मृत्यु के पश्चात् उन्हें अपना पैतृक व्यवसाय संभालना पड़ा। अत : सातवीं कक्षा के बाद से उनकी शिक्षा घर पर ही हुई। अंग्रेजी के अतिरिक्त वेद, उपनिषद्, पुराण, स्मृति, इतिहास आदि का इन्होंने गहन अध्ययन किया।

उस समय ब्रजभाषा ही हिन्दी की काव्य-भाषा थी और प्रसाद जी की प्रारम्भिक काव्य-रचना भी, समस्या-पूर्त्ति के रूप में ब्रजभाषा ही में हुई। ये समस्या-पूर्त्तियाँ, 'इन्दु' मासिक पत्रिका में प्रकाशित होती थीं और इसी पत्रिका ने उन्हें कवि-रूप में प्रतिष्ठित किया। क्षय रोग से ग्रसित होकर वे 48 वर्ष की आयु ही में चल बसे जिससे हिन्दी जगत की अपूरणीय क्षति हुई।

प्रसादजी हिन्दी में छायावाद और रहस्यवाद के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। हिन्दी- कविता को उन्होंने द्विवेदी युग की कथात्मकता और नीतिवादी दृष्टि से मुक्त कर छायावाद की सरस भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित किया। प्रसादजी मूलत: कल्पना और भावना के कवि हैं। भावना के क्षेत्र में भी वे प्रधानतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं, मादकता और आनन्द के कवि हैं। दर्शन-शास्त्र से उत्पन्न हुए मन के गहन विषाद को इन्होंने 'आँसू' में लोकमंगल की भावना से जोड़ा है। वे जगत् की नश्वरता के समक्ष मानव जीवन की नगण्यता के बोध के कवि हैं। कभी कभी उनमें सूफी कवियों जैसी उत्कृष्ट वेदना का भाव पाया जाता है। उन्होंने अपने इतिहास और दर्शन के ज्ञान को अपने महाकाव्य 'कामायनी' में कौशल पूर्वक समायोजित किया है। कामायनी मानव के बाह्य और आन्तरिक विकास का कथा-काव्य है जिसकी परिसमाप्ति शैव आनंदवाद की प्रतिष्ठा के साथ हुई है। कालक्रम से इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ इस प्रकार हैं : कानन कुसुम, प्रेम-पथिक, महाराणा का महत्त्व, चित्राधार, आँसू, झरना, लहर, कामायनी।

वस्तुत: प्रसादजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। काव्य के अतिरिक्त उन्होंने नाटक, उपन्यास और निबन्ध भी लिखे।

प्रस्तुत कविताएं।

प्रथम कविता 'ओ चिन्ता की पहली रेखा' प्रसादजी के 'कामायनी' महा-काव्य के प्रथम सर्ग से ली गई है। जल-प्रलय के बाद विलासी देव-संस्कृति के एक

मात्र काविष्ट मनु, हिमालय के एक शिखर पर बैठे चिन्ता-मग्न हैं। वे सोच रहे हैं कि केवल सुखों का भोग करने वाली देव-जाति विलासिता की अतिशयता के कारण ही विनाश को प्राप्त हुई अन्यथा जल-प्रलय होता ही क्यों? निरन्तर चिन्ता करते करते मनु थक गये हैं और अन्ततः स्वयं चिन्ता के स्वरूप-विश्लेषण की भूमि पर आ लगे हैं। प्रस्तुत काव्यांश का संदर्भ यही है। दूसरी कविता 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' 'चन्द्रगुप्त' नाटक से ली गई है जो एक ओर भारतीय संस्कृति के स्वर्णिम पृष्ठों की ओर संकेत करती है तो दूसरी ओर कवि के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय देती है। दोनों कविताओं में प्रसादजी की शब्द-चयन-क्षमता तथा भाषा का सहज प्रवाह दर्शनीय है। मूर्त्त का अमूर्त्त विधान, अमूर्त्त का मूर्त्त चित्रण, मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय आदि छायावादी प्रवृत्तियाँ इन कविताओं में प्रचुर रूप में देखी जा सकती हैं।

□ □ □

ओ चिन्ता की पहली रेखा

"ओ चिन्ता की पहली रेखा
अरी विश्व-वन की व्याली,
ज्वालामुखी-स्फोट के भीषण
प्रथम कम्प-सी मतवाली!

हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा!
हरी-भरी-सी दौड़-धूप
ओ जल-माया की चल रेखा!

इस ग्रह-कक्षा की हलचल री
तरल गरल की, लघु लहरी,
जरा अमर जीवन की, और न
कुछ सुनने वाली, बहरी!

अरी व्याधि की सूत्रधारिणी!
अरी आधि, मधुमय अभिशाप!
हृदय-गगन में धूमकेतु-सी,
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप।

मनन करायेगी तू कितना?
उस निश्चिन्त जाति का जीव,

अमर मरेगा क्या ? तू कितनी
　　गहरी डाल रही है नींव ?

आह ! गिरेगी, हृदय लहलहे
　　खेतों पर करका-घन-सी,
छिपी रहेगी अन्तरतम में
　　सब के तू निगूढ़ धन सी ।

बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता
　　तेरे हैं कितने नाम !
अरी पाप है तू, जा, चल जा
　　यहां नहीं कुछ तेरा काम ।

विस्मृति आ, अवसाद घेर ले,
　　नीरवते ! बस चुप कर दे,
चेतनते चल जा, जड़ता से
　　आज शून्य मेरा भर दे ।"

□ □ □ □

"चिन्ता करता हूँ मैं जितनी
　　उस अतीत की, उस सुख की,
उतनी ही अनन्त में बनती
　　जातीं रेखाएँ दुख की ।

आह सर्ग के अग्रदूत ! तुम
　　असफल हुए, विलीन हुए ।
भक्षक या रक्षक, जो समझो,
　　केवल अपने मीन हुए ।

अरी आँधियो ! ओ बिजली की
　　दिवा--रात्रि तेरा नर्तन,
उसी वासना की उपासना,
　　वह तेरा प्रत्यावर्तन ।

मणि-दीपों के अन्धकारमय
　　अरे निराशापूर्ण भविष्य !

देव दम्भ के महामेध में
　　सब कुछ ही बन गया हविष्य ।

अरे अमरता के चमकीले
　　पुतलो ! तेरे वे जयनाद,
काँप रहे हैं आज प्रतिध्वनि
　　बन कर मानो दीन विषाद ।

प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित
　　हम सब थे भूले मद में,
भोले थे, हाँ तिरते केवल
　　सब विलासिता के नद में ।

वे सब डूबे, डूबा उनका—
　　विभव, बन गया पारावार,
उमड़ रहा था देव-सुखों पर
　　दुःख-जलधि का नाद अपार ।"

—'कामायनी' से

□ □ □

अरुण यह मधुमय देश हमारा !

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।।
सरस तामरस-गर्भ-विभा पर, नाच रही तरु-शिखा मनोहर ।
छिटका जीवन-हरियाली पर, मंगल-कुंकुम सारा ।।
लघु सुरधनु से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे ।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये, समझ नीड़ निज प्यारा ।।
बरसाती आँखों के बादल बनते जहाँ, भरे करुणा-जल ।
लहरें टकरातीं अनन्त की, पाकर जहाँ किनारा ।।
हेम-कुम्भ ले उषा सवेरे, भरती ढुलकाती सुख मेरे ।
मदिर ऊँघते रहते जब, जग कर रजनी भर तारा ।।

—'चन्द्रगुप्त' नाटक से

अभ्यास-प्रश्न

1. निम्नलिखित शब्दों के विलोम शब्द दीजिए :
चपल, चेतनता, विषाद, मधुमय, अनन्त, उषा ।

2 "महामेध" शब्द में कौनसा समास है ?

(क) तत्पुरुष (ख) द्विगु

(ग) कर्मधारय (घ) अव्ययीभाव

(च) द्वन्द्व (

3. 'चिन्ता' के लिए कवि ने जो उपमान जुटाये हैं उनकी सूची बनाइये ।

4. अचेतन का चेतनीकरण किस पंक्ति में हुआ है ?

(क) ओ जल-माया की चल रेखा !

(ख) अरी विश्व-वन की व्याली ।

(ग) इस ग्रह-कक्षा की हलचल री !

(घ) प्रथम कम्प सी मतवाली ।

(च) तरल गरल की लघु लहरी । (

5. "देव-दम्भ के महामेध में, सब कुछ ही बन गया हविष्य" । इस पंक्ति के अर्थ को सरल भाषा में समझा कर लिखिए ।

6. "अरी व्याधि की सूत्रधारिणी !
अरी आधि, मधुमय अभिशाप !"

प्रस्ततु उक्ति के भाव को पल्लवित कीजिये ।

7. "उड़ते खग जिस ओर मुँह किये, समझ नीड़ निज प्यारा ।"

इस पंक्ति के प्रतीकार्थ को स्पष्ट कीजिये ।

8. पठित कविताओं के आधार पर सिद्ध कीजिए की प्रसाद की कल्पनाशक्ति अत्यन्त उर्वर थी ।

9. प्रसाद की काव्य-भाषा पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए ।

सुमित्रानन्दन पन्त

जन्म 1900 ई
मृत्यु 1977 ई

कवि-परिचय :

पन्तजी का जन्म अल्मोड़ा जिले के कौसानी ग्राम में हुआ । यह ग्राम हिमालय की एक ऐसी घाटी में बसा है जो अपने रम्य प्राकृतिक दृश्यों के कारण प्रसिद्ध है । यही कारण रहा कि प्रकृति के प्रति मोह उनकी कविता की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति बन गई । पंत प्रधानतः संवेदनशील इन्द्रिय-बोध के कवि है । छाया-

ादी कवियों में सबसे सहज स्वीकार्य और लोकप्रिय होने वाले कवि पन्त ही । उनकी कविता ने छायावाद को प्रतिष्ठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा ी । उनकी काव्य-चेतना ने कई मंजिलें तय की हैं । युग-बोध के अनुसार अपनी ाव्य-भूमि में परिवर्तन करते रहना पन्त की काव्य-चेतना की विशेषता है । ारम्भ में वे प्रकृति-सौन्दर्य से अभिभूत थे, फिर मानव-सौन्दर्य से प्रभावित हुए । दनन्तर मानव-मानव के बीच समानता स्थापित करने की प्रेरणा से वे साम्यवाद ी ओर आकृष्ट हुए और अन्ततः मार्क्सवाद की रूढ़ जड़ता और स्थूल यथार्थ विरत होकर अध्यात्म-प्रधान अरविन्द-दर्शन की ओर बढ़ चले । पन्त मानवता- ादी कवि थे जो मानव इतिहास के सतत विकास में विश्वास करते थे । जातिवाद और संकीर्णता के घोर विरोधी रहे । उनकी कृति 'लोकायतन' 1964 ई.) एक महाकाव्य है जो उनके परिपक्व चिन्तन को प्रतिबिम्बित करता । काल क्रम से उनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं : वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, ुंजन, ज्योत्स्ना, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, युगपथ, उत्तरा, जतशिखर, शिल्पी, सौवर्ण, अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतन, किरण वीणा, पौ फटने से पहले तथा पतझर ।

ाठ-परिचय ।

पन्तजी प्रकृति के मधुर गायक हैं । "नौका विहार" कविता में सैकत शैय। र दुग्ध धवल तन्वंगी गंगा का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है । गंगा में उठने ाली लहरों का मनमोहक चित्र कविता की पंक्तियों में उभारा गया है । चांदनी ात में नौका-विहार का एक विशेष आनन्द है । काला कांकर के पास बहने ाली गंगा में पन्तजी का यह नौका विहार अत्यन्त जीवन्त है । गंगा को कई रूपों ं प्रस्तुत किया गया है ।

कविता के अन्तिम अंश में पन्तजी ने जीवन को भी एक "नौका विहार" ाना है । वे कहते हैं कि जीवन नौका को मधुर चांदनी के दर्शन होते हैं । कभी- भी यह जीवन-नौका तूफानों से टक्कर लेती है । सभी संघर्षों को झेलती हुई ह नौका भवसागर पार कर जाती है । कवि ने बलपूर्वक कहा है कि सामान्य ाव तो नाविक की सहायता से चलती है किन्तु जीवन नैया को ठीक स्थान पर हुंचाने का कार्य परम पिता करता है । पन्तजी ने सामान्य नौका विहार का एक जीव चित्र प्रस्तुत करने के साथ-साथ जीवन दर्शन भी प्रस्तुत किया है । इस विता में पन्तजी के छायावादी तथा रहस्यवादी रूप के दर्शन होते हैं ।

□ □ □

नौका विहार

शांत, स्निग्ध, ज्योत्सना उज्ज्वल !
अपलक अनन्त, नीरव भूतल !
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रांत, क्लांत निश्चल !
तापस बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरें उर पर कोमल कुंतल !
गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर,
चंचल अंचल-सा नीलाम्बर !
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर !
चांदनी रात का प्रथम प्रहर
हम चले नाव ले कर सत्वर !
सिकता की सस्मित सीपी पर, मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो, पालें चढ़ीं, उठा लंगर !
मृदु मंद मंद, मंथर मंथर, लघु तरणि, हंसिनी-सी सुन्दर,
तिर रही, खोल पालों के पर !
निश्चल जल के शुचि दर्पण पर, बिम्बित हो रजत पुलिन निर्भर,
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर !
कालाकांकर का राज भवन, सोया जल में निश्चिंत प्रमन,
पलकों में वैभव स्वप्न सघन !
नौका से उठती जल-हिलोर !
हिल पड़ते नभ के ओर-छोर !
विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल तारक दल,
ज्योतित कर जल का अंतस्तल;
जिनके लघु दीपों को चंचल, अंचल की ओट किए अविरल,
फिरतीं लहरें लुक-छिप पल-पल !
सामने शुक्र की छवि झलमल, पैरती परी-सी जल में कल,
रुपहरे कचों में हो ओझल !
लहरों के घूंघट से झुक-झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक मुख,
दिखलाता, मुग्धा-सा रुक-रुक !
अब पहुंची चपला बीच धार !

छिप गया चांदनी का कगार !
दो बांहों-से दूरस्थ तीर, धारा का कृश कोमल शरीर,
आलिंगन करने को अधीर !
अति दूर, क्षितिज पर विटप माल, लगती भ्रू-रेखा-सी अराल,
अपलक नभ नील नयन विशाल ?
मां के उर पर शिशु-सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,
ऊर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप !
वह कौन विहग ? क्या विकल कोक उड़ता, हरने निज विरह-शोक,
छाया की कोकी को विलोक !
पतवार घुमा, अब प्रतनु भार !
नौका घूमी विपरीत धार !
डांडों के चल कर-तल पसार, भर-भर मुक्ता फल फेन स्फार,
बिखराती जल में तार-हार !
चांदी के सांपों-सी रलमल, नाचतीं रश्मियां जल में चल,
रेखाओं-सी खिंच तरल सरल !
लहरों की लतिकाओं में खिल, सौ-सौ शशि सौ-सौ उडु झिलमिल
फैले फूले जल में फेनिल !
अब उथला सरिता का प्रवाह, लग्गी से ले ले सहज थाह,
हम बढ़े घाट को सहोत्साह !
ज्यों-ज्यों लगती है नाव पार !
उर में आलोकित शत विचार !
इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम !
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास !
हे जग-जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म-मरण के आर पार,
शाश्वत जीवन-नौका विहार !

—'रश्मिबंध' से

अभ्यास प्रश्न

1. उन पंक्तियों का गद्यान्तर कीजिए जिनमें गंगा का रूपक तापस बाला से बांधा गया है।
2. "निश्चल जल के शुचि दर्पण पर,
बिम्बित हो रजत पुलिन निर्भर,

दुहरे ऊंचे लगते क्षण भर।'' ——इन पंक्तियों में—

(1) जल की उपमा किससे दी गई है ? क्यों ?

(2) दुहरे ऊंचे लगने वाले कौन हो सकते हैं ? दुहरे ऊंचे क्यों कहा गया होगा ?

3. नौका से उठती जल हिलोरों से नभ कैसे हिल उठता है ?

4. ''लहरों को टिमटिमाते दीप आंचल में छिपाए'' बताकर कवि ने किस दृश्य का बिम्ब उभारा है ?

5. ''शुक्र'' तो पुल्लिग का प्रयोग है, तब कवि ने उसकी उपमा ''परी'' से किस आधार पर दी होगी ?

6. ''चांदनी का कगार'' किसके लिए प्रयुक्त हुआ है ? उसके लिए कविता में अन्य प्रयोग कौन सा हुआ है ?

7. ''इस धारा-सा ही जग का क्रम''—इस रूपक की व्याख्या कीजिए।

8. निम्नलिखित का प्रासंगिक आशय स्पष्ट कीजिए—

(1) नीरव भूतल (2) हंसिनी सी सुन्दर

(3) चपला (4) डांडों के चल करतल

9. भाषिक पर्याय बताइए—

रजतहास, कर्णधार, सहोत्साह, उडु, फेनिल,
स्फार, प्रतनु भार, दूरस्थ, कृश, तिर्यक।

10. ''साड़ी की सिकुड़न सी''

इसमें साड़ी शब्द किसका चित्र व्यक्त कर रहा है—

(1) गंगा की लहरों का

(2) गंगा के सिकुड़े हुए पाट का

(3) चांदनी भरे आकाश का

(4) गंगा के रेतीले किनारों का ( )

11. ''कर्णधार'' शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है ?

(1) कानों में धारण किए जाने वाले कुण्डल

(2) पतवार

(3) नाविक

(4) नाव का दिशा नियंत्रक ( )

महादेवी वर्मा

जन्म 1907 ई.
मृत्यु 1990 ई.

कवि-परिचय :

महादेवी वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश में फरूखाबाद के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। उनके पिता गोविन्द प्रसाद वर्मा तथा माता हेमरानी देवी दोनो शिक्षा-प्रेमी थे। उनकी माता तो कविता करती ही थीं, उनके नाना भी ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। इस प्रकार, काव्य-रचना के उनके संस्कार जन्मजात थे। ई. 1933 में उन्होंने संस्कृत में एम. ए. किया। तत्पश्चात् अनौपचारिक रूप से इन्होंने भारतीय दर्शन-शास्त्र का गंभीर अध्ययन किया। प्रयाग में महादेवी ने महिला विद्यापीठ की स्थापना की जिसका जीवन-पर्यन्त वे कुशल संचालन करती रहीं।

महादेवीजी छायावादी युग की प्रसिद्ध कवयित्री रहीं। उनकी कविताओं में करुणा की भावना प्रधान है, जिसे कुछ लोग बौद्ध दर्शन का प्रभाव मानते हैं। इस के अतिरिक्त आतुरता, प्रतीक्षा, समर्पण और जिज्ञासा उनकी कविता की प्रमुख भावनाएँ हैं। उनमें नारी-सुलभ संकोच भी है जिससे उनकी कविताओं की दोहरी व्याख्या तक हो जाती है—कभी उन्हें श्रृंगारी समझा जाता है, कभी रहस्यवादी। सच तो यह है कि श्रृंगार इनकी कविता पर खींच-तान करके थोपा जाता है। इनकी श्रृंगारिक कही जाने वाली कविताएँ वस्तुतः उच्च कोटि के अध्यात्म से प्रेरित हैं। महादेवी की कविताएँ भारतीय नारी की मानसिकता की उपज हैं। उनकी कविताओं की करुणा का सम्बन्ध न केवल उनके निजी दुख से है अपितु समग्र भारतीय नारी-समाज के दुःख से भी है।

छायावाद के साथ-साथ रहस्यवाद की कविताएँ भी महादेवी ने प्रचुर परिमाण में लिखी हैं। इन रचनाओं में आत्मा-परमात्मा के भावात्मक सम्बन्धों के जितने सुन्दर चित्र महादेवी ने सँजोये हैं, उतने अन्यत्र दुर्लभ हैं। इन सम्बन्धों के लिए उन्हें प्रकृति ने एक सशक्त माध्यम प्रदान किया है। महादेवी जी की अधिकांश कविताएँ गेय हैं क्योंकि उनमें काव्य और संगीत का मणिकांचन संयोग है। उनकी काव्य-कृतियाँ काल-क्रम से इस प्रकार हैं : नीहार, नीरजा, सांध्यगीत, यामा और दीपशिखा।

महादेवी का गद्य भी उनके काव्य से कम सशक्त नहीं। उन्होंने निबन्ध, रेखा-चित्र और संस्मरण भी लिखे हैं जो हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

प्रस्तुत कविताएँ।

प्रथम कविता 'मैं नीर-भरी दुख की बदली' महादेवी की चुनी हुई कविताओं के संग्रह 'परिक्रमा' से ली गई है। इसे महादेवी की प्रतिनिधि रचना कहा जा सकता है। इस कविता का केन्द्रीय भाव—'करुणा' है जो कविता के अन्तिम छन्द में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा है। प्रस्तुत कविता का यही सन्देश है कि अपने निजी स्वार्थों की उपेक्षा कर व्यक्ति को व्यापक जन-हित मे अपनी अस्मिता का सार्थक समर्पण कर देना चाहिए। इस कविता पर बौद्ध दर्शन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। दूसरी कविता 'वह कौन है ?' एक छायावादी रचना है और इसका केन्द्रीय भाव—'जिज्ञासा' है। कवयित्री की विरहिणी आत्मा को अपने अज्ञात प्रेमी—परमात्मा, जिसे उसने कभी देखा नहीं है, से अस्पष्ट प्रेम-संकेत बराबर प्राप्त हो रहे हैं पर वह पर्दे की ओट में छिपा रहता है। कवयित्री जानना चाहती है कि प्रेम-सन्देश भेजने वाला अन्ततः है कौन और कैसा है उसका स्वरूप ? महादेवीजी ने प्रकृति के उन दृश्यों और क्षणों को भी बड़ी बारीकी से सँजोया है कि जब ये सन्देश प्राप्त हुए हैं। महादेवी जी की काव्य-भाषा का शब्द-लाघव सराहनीय है।

□ □ □

मैं नीर भरी दुख की बदली !

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
    नयनों में दीपक से जलते
    पलकों में निर्झरिणी मचली !

मेरा पग पग संगीत भरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,
    नभ के नवरँग बुनते दुकूल,
    छाया में मलय बहार पली !

मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
    रज-कण पर जल-कण हो बरसी
    नवजीवन अंकुर बन निकली !

पथ को न मलिन करता आना,
पद-चिन्ह न दे जाता जाना,

सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अंत खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली

—'परिक्रमा' से

□ □ □

वह कौन है ?

कुसुम-दल से वेदना के दाग को
पोंछतीं जब आँसुओं की रश्मियाँ,
चौंक उठतीं अनिल के निश्वास छू
तारिकाएँ चकित सी अनजान सी,
तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है ?

शून्य नभ पर उमड़ जब दुख-भार सी
नैश तम में, सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी
जब सुनहले आँसुओं के हार सी,
तब चमक जो लोचनों को मूँदता,
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है ?

अवनि अम्बर की रुपहली सीप में,
तरल मोती सा जलधि जब काँपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में,
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा, वह कौन है ?

जब कपोल-गुलाब पर शिशु-प्रात के
सूखते नक्षत्र जल के बिन्दु से,

रश्मियों की कनक-धारा में नहा
मुकुल हँसते मोतियों का अर्घ्य दे,
स्वप्न-शाला में यवनिका डाल जो
तब दृगों को खोलता वह कौन है ?

—'परिक्रमा' से

अभ्यास प्रश्न

1. "तड़ित" के दो पर्यायवाची शब्द लिखिए।
2. "तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से" पंक्ति में कौनसा अलंकार है ?
   (क) उपमा (ब) उत्प्रेक्षा (ग) रूपक
   (घ) अनन्वय (च) असंगति ( )
3. "सूखते नक्षत्र जल के बिन्दु से" पंक्ति में "नक्षत्र जल" से क्या अभिप्राय है ?
4. क्षितिज और भृकुटि में क्या समानता है ?
5. "अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में"
   यहाँ सीप को 'रुपहली' क्यों कहा गया है ?
6. "तब बुला जाता मुझे <u>उस पार</u> जो"
   पंक्ति के रेखांकित अंश का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
7. "मैं नीर भरी दुख की बदली" कविता के मूल भाव को समझा कर लिखिए।
8. "कुमुद-दल से वेदना के दाग को" कविता में छायावाद की कौनसी प्रवृत्ति विशेष रूप से लक्षित होती है।
9. "परिचय इतना इतिहास यही
   उमड़ी कल थी मिट आज चली।"
   बदली का यह आत्म-कथ्य क्या मनुष्य-मात्र के लिए भी सही है।
10. "मैं नीर भरी दुख की बदली"
    इस कविता के मूल भाव को प्रकट नहीं करने वाली पंक्ति कौन सी है ?
    (1) उमड़ी कल थी मिट आज चली
    (2) नवजीवन अंकुर बन निकली
    (3) सुख की सिहरन हो अन्तखिली
    (4) पलकों में निर्झरिणी मचली

रामधारीसिंह दिनकर

जन्म 1908 ई.
मृत्यु 1974 ई.

कवि-परिचय।

रामधारीसिंह दिनकर का जन्म बिहार के जिला मुंगेर के सिमरिया ग्राम में हुआ। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से बी. ए. आनर्स की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने 1935 ई. में बिहार प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व किया। वे राज्य-सभा के मनोनीत सदस्य रहे और समय-समय पर देश के सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य रूप में अनेक देशों में हिन्दी-साहित्य का प्रतिनिधित्व किया।

दिनकर ओजस्वी और राष्ट्रीय भावनाओं के कवि के रूप में विख्यात हैं। राष्ट्रीयता की प्रेरणा इन्होंने माखनलाल चतुर्वेदी से ग्रहण की। उनकी रचनाओं में भारत के स्वर्णिम अतीत का गौरव-गान, क्रान्ति का प्रखर स्वर तथा राष्ट्रीयता का शंखनाद है। 'हिमालय' पर लिखी गई इनकी कविता 'जागो नगपति, जागो विशाल' अत्यन्त लोकप्रिय हुई। दिनकर में साम्राज्यवाद और सामन्तवाद की अमानवीयता के विरुद्ध घोर असन्तोष और क्षोभ की भावना थी। ओज इनकी कविताओं का स्थायी गुण रहा। भारतीय संस्कृति का उन्नयन तथा राष्ट्रीयता की भावना दिनकर के काव्य का मूल स्वर रही।

दिनकर की प्रमुख कृतियों के नाम इस प्रकार हैं: द्वन्द्वगीत, रेणुका, हुंकार, रसवन्ती, कुरुक्षेत्र, मिट्टी की ओर, परशुराम की प्रतीक्षा और उर्वशी। इनमें से प्रथम तीन कृतियाँ ओज गुण-प्रधान हैं। 'रसवन्ती' श्रृंगार की अन्तः सलिला है। 'कुरुक्षेत्र' में युद्ध पर विचार किया गया है और यह रचना स्पष्टतः द्वितीय विश्व-युद्ध की विभीषिका से प्रेरित है। 'मिट्टी की ओर' में कवि की दृष्टि यथार्थ के प्रति उन्मुख हुई है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' देश की आन्तरिक दारुण दशा पर ध्यान केन्द्रित करती है, जबकि 'उर्वशी' नर-नारी के सनातन यौन सम्बन्धों को मनोविज्ञान की दृष्टि से देखने वाला श्रृंगारी काव्य है जिसने आध्यात्मिक ऊँचाइयों का भी स्पर्श किया है। कवि का 'उर्वशी' काव्य 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित भी हुआ।

पाठ-परिचय :

"समर शेष है" कविता दिनकर की एक सशक्त रचना है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् यह आशा थी कि ग्रामों की दशा सुधरेगी और ग्रामवासी सुख पूर्वक जी सकेंगे। दिनकर जी ने ग्रामों की स्थिति का यथार्थ चित्रण करते हुए कहा है—

"वह संसार जहां पर अब तक पहुंची नहीं किरण है"। कवि के स्वर में आक्रोश है और वे इस दीन दशा को देख कर क्षुब्ध हो जाते हैं और कहते है कि "और नही तो तुझ पर पापिन महावज्र टूटेगा।"

वे यही चाहते हैं कि स्वराज्य की धारा गांवों तक पहुंचे। इस कार्य में बाधा पहुंचाने वालों को कवि ने पर्वत और ऐरावत माना है। यदि ये इसी प्रकार जन-गंगा को रोकने का प्रयास करते रहे तो जन-गंगा इनको बहा कर ले जाएगी।

कवि ने यही कहा है कि समानता का वातावरण हो जिससे भूख-प्यास से जूझते देशवासी कुछ राहत अनुभव करें। विषमता की काली जंजीरों के टूटने पर ही सच्चा स्वराज्य आ सकेगा। ऐसी स्थिति नहीं आने तक समर चलता ही रहेगा।

कविता की भाषा ओजपूर्ण है। यह कविता देशवासियों में स्वराज्य के सच्चे संदेश का संचार करती है।

□ □ □

समर शेष है

ढीली करो धनुष की डोरी,
तरकस के कस खोलो।
किसने कहा समर की वेला गई,
शांति से बोलो।
किसने कहा और मत बेधो
हृदय वह्नि के शर से
भरो भुवन का अंग कुसुम से
कुंकुम से केसर से।
कुंकुम लेपूं किसे,
सुनाऊं किसको कोमल गान।
तड़प रहा आंखों के आगे
भूखा हिन्दुस्तान।
वह संसार जहां पर अब तक
पहुंची नहीं किरण है।
जहां क्षितिज है मौन
और यह अम्बर तिमिरवरन है।
देख जहां का दृश्य

अभी तक अंतस्तल हिलता है ।
मां को लज्जावसन और
शिशु को न क्षीर मिलता है ।
पूछ रहा है जहां चकित हो
जन-जन देख अकाज ।

कई वर्ष हो गए
    राह में अटका कहां स्वराज ?
अटका कहां स्वराज
    बोल दिल्ली तू क्या कहती है ?

तू रानी बन गई
वेदना जनता क्यों सहती है ?
सबके भाग्य दबा रखे हैं
तूने अपने कर से ।
उतरी थी जो विभा
बता बन्दिनी हुई किस घर में ।
समर शेष है, यह प्रकाश
बंदीगृह से छूटेगा ।
और नहीं तो तुझ पर पापिन,

महावज्र टूटेगा ।
समर शेष है, इस स्वराज को
सत्य बनाना होगा ।
जिसका यह है न्यास
उसे सत्वर पहुंचाना होगा
धारा का मग रोक
अनेकों पर्वत खड़े हुए हैं ।
धारा का पथ रोक
इन्द्र के गज जो अड़े हुए हैं ।
कह दो, उन्हें हटें अगर तो
जग में यश पायेंगे ।
और नहीं तो ऐरावत पत्तों से बह जाएंगे ।
समर शेष है जनगंगा को
खुलकर लहराने दो ।

महलों को डूबने
और मुकुटों को बह जाने दो ।
पथरीले ऊंचे टीले हैं तो उनको तोड़ेंगे ।
समतल पाटे बिना समर की भूमि नहीं छोड़ेंगे ।
समर शेष है, चलो ज्योतियों के बरसाते तीर ।
खंड-खंड हो गिरे विषमता की काली जंजीर ।

अभ्यास प्रश्न

1. कवि ने धनुष की डोरी ढीली करने का विरोध क्यों किया ?
2. "तडफ रहा आंखों के आगे भूखा हिन्दुस्तान"
   इस पंक्ति का भाव स्पष्ट कीजिए ।
3. "जन-जन देख अकाज" का आशय स्पष्ट कीजिए ।
4. स्वतंत्रता के प्रकाश को मुक्त करवाने के लिए क्या किया जाना अपेक्षित है ?
5. 'और नहीं तो तुझ पर पापिन महावज्र टूटेगा'। इस पंक्ति में महावज्र टूटने से कवि का क्या अभिप्राय है ? स्पष्ट कीजिए ।
6. "इस स्वराज्य को सत्य बनाना होगा" इस कथन का आशय स्पष्ट कीजिए ।
7. "समर शेष है जन गंगा को खुल कर लहराने दो" जन-गंगा को खुल कर लहराने को कवि ने विशेष महत्व क्यों दिया ?
8. "ज्योतियों के तीर" तथा 'विषमता की काली जंजीर' का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?
9. विषमता की जंजीर को तोड़ने के लिए किन-किन प्रयासों की आवश्यकता है ? स्पष्ट कीजिए ।
10. "तडप रहा आंखों के आगे भूखा हिन्दुस्तान"
    इस पंक्ति का मूल भाव कौनसा है ?
    (1) दया (2) घृणा
    (2) चिन्ता (4) आक्रोश ( )
11. कविता में आए हुए "पर्वत" और "गज" के लिए कौनसा प्रतीक उपयुक्त नहीं रहेगा ?
    (1) पूंजीपति (2) शासक
    (3) किसान (4) उद्योगपति ( )

शिवमंगलसिंह 'सुमन'

जन्म 1916 ई.

कवि-परिचय :

शिवमंगलसिंह "सुमन" की शिक्षा बनारस में हुई। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से एम. ए. और पी एच. डी. की उपाधि प्राप्त करने के बाद ये इन्दौर और उज्जैन के महाविद्यालयों में हिन्दी प्राध्यापक के रूप में कार्य करते रहे। बीच में कुछ समय नेपाल-स्थित भारतीय दूतावास में सांस्कृतिक अधिकारी के रूप में कार्य किया। तत्पश्चात् विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के कुलपति भी रहे।

सुमनजी हिन्दी के लोकप्रिय कवि और गीतकार हैं। उनकी काव्य-रचना कभी एक दिशा पकड़ कर नहीं चली। उनका अनुभव संसार अत्यन्त व्यापक है, अतः उनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता भी है और अन्तर्राष्ट्रीयता भी, नवीनता के प्रति आकर्षण है तो प्राचीनता का मोह भी। पर इन सबके ऊपर एक आशा, एक आस्था, एक उत्साह और प्रगतिशील दृष्टि है।

तथापि इन के काव्य का मूल स्वर ओजस्विता का है। प्रगतिवाद के अन्तिम चरण में जिन कवियों के नाम मुख्य रूप से उभर कर आये, उनमें 'सुमन' का नाम विशेष महत्व का है। उन के प्रणय-गीतों में मन की भाव-विह्वलता और वेदना की गहरी टीस मिलती है। उनके भावुकतापूर्ण गीतों में सामाजिक उत्तरदायित्व और प्रणय की मनुहार दोनों बातें साथ साथ मिलती हैं। प्रेमगीतों में संयोग और वियोग के मार्मिक चित्र प्राप्त होते हैं। इनका प्रकृति-चित्रण भी काफी कुछ जीवन्त और मोहक है।

सुमनजी ने बहुत सी कविताएँ महामानवों पर भी लिखी हैं। रवीन्द्र नाथ ठाकुर, प्रेमचन्द, गाँधी, नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, मदनमोहन मालवीय, निराला, पुश्किन और लेनिन पर उन्होंने अपनी काव्य-श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं। उनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं : विन्ध्य-हिमालय, प्रलय-सृजन, मिट्टी की बारात, पर आँखें नहीं भरीं, विश्वास बढ़ता ही गया।

उनकी कविताओं में अपने समाज, रूढ़ियों और वातावरण के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त हुआ है। जीवन-संघर्ष की वास्तविकता और विद्रोह का तूफानी प्रवाह उनके काव्य में विशिष्ट भंगिमा के साथ प्रस्तुत हुआ है। अभिव्यक्ति की सहजता ने उनके काव्य को प्रभावशाली और हृदयग्राही बनाया है। उनके काव्य में जीवन के अनेक रंगों का चित्रण हुआ है। प्रणयी की व्याकुलता, नव-युग की आकांक्षा, जागृति का सन्देश, वैषम्य के प्रति आक्रोश, प्रगतिवाद का सुनियोजित स्वर और आशा-निराशा के अनेक प्रकार के गहरे रंग उनकी कविता में मिलते हैं।

उनकी काव्य-भाषा स्वाभाविक, सरल और सुबोध है। ओज गुण के कारण उनके काव्य को प्रभावी क्षमता में वृद्धि हुई है। कवि-सम्मेलनों में सुमनजी की कविताएँ अत्यन्त लोक-प्रिय रहीं।

प्रस्तुत कविता :

सुमनजी की प्रस्तुत कविता 'दीपावली' उनके काव्य-संग्रह 'विश्वास बढ़ता ही गया' से ली गई है। कविता का मूल कथ्य तो भारतीय जन-मानस में रची-बसी राम-कथा ही है पर अपनी प्रगतिशील दृष्टि के कारण कथा को कवि ने एक नवीन रूप देने की चेष्टा की है। राम के युग को उन्होंने कृषि-सभ्यता का युग माना है, जब उत्पादन का एकमात्र साधन धरती ही थी। सीता को धरा-पुत्री माना गया है और रावण को कृषकों के शोषक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कृषि-सभ्यता के इस शत्रु को राम ने कृषक-जातियों की सहायता से पराजित किया और फलस्वरूप कृषक के श्रम का पूरा लाभ पुनः कृषक ही को मिलने लगा। इसी उपलक्ष में धरती-पुत्रों ने अपनी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति दीप-माला जला कर की, जिसे आजकल हम 'दीपावली' कहते हैं।

कविता की भाषा ओज-गुण-प्रधान है। शब्द-चयन भी परिस्थिति के अनुकूल है और कविता के प्रभाव की अभिव्यक्ति भी बड़ी सफल रही है।

□ □ □

दीपावली

तुम मनाते हो जिसे कहकर दिवाली,
यह नहीं कोई प्रथा नूतन, निराली,
आज भी जग में अमा की रात काली,
स्नेह से नव मृत्तिका के पात्र खाली।

अधर सूखे गाल पिचके, दीन कोटरलीन आँखें,
शलभ बेसुध छटपटाते क्लिन्न मन विच्छिन्न पाँखें,
मुर्दनी वातावरण में धुएँ की घूर्णित घुटन सी,
दर-ब-दर फैली हुई बदबू विकट शव के सड़न-सी।

□ □ □

युगों पहले एक दिन यों ही अंधेरा हो गया था,
सूर्य, शशि, तारे छिपे सहसा, सवेरा खो गया था,
एक काला हाथ ऊषा की ललाई धो गया था,

गरज यह, जो कुछ न होना चाहिए, वह हो गया था ।

दौर नव कृषि-सभ्यता का राम बन कर रम रहा था,
कारवाँ यायावरों का बस रहा था, जम रहा था,
झोंपड़ों में ज्योति जीवन का प्रदीप जला गई थी,
धरा की बेटी मनुज की ब्याहता बन आ गई थी ।

कि जिसके जनक ने धरती स्वयं जोती, स्वयं बोयी,
कि हल की नोंक में लक्ष्मी उलझ उभरी, रही खोयी,
जमाना बाहुबल का था, स्वयंवर का बहाना था,
जिसे पाना पिनाकी के धनुष पर ज्या चढ़ाना था ।
धरा की आत्मजा कर में लिये वरमाल चलती थी,
कि स्वर्णिम दीप की चल लौ अंधेरे में बिछलती थी ।

गड़ा धन पा गया मानव कि खेती लहलहाती थी,
कि गेहूँ गहगहाता था, कि मक्का महमहाती थी,
कि अरहर सरसराती थी कि बजरा हरहराता था,
कि अलसी आँख मलती थी कि जौ में ज्वार आता था

कि दीपों का नया त्योहार घर घर जगमगाता था,
छलकता स्नेह पग पग पर नयी धुन गुनगुनाता था,
पवन नद नदी निर्झर में रवानी ही रवानी थी,
कली-अलि तरु-लता सब में जवानी ही जवानी थी ।

नये ज्योतिष्क पिण्डों से तमस की कुछ न चलती थी,
कहत या महामारी की न कुछ भी दाल गलती थी,
विषमता, दैन्य, करुणा, भूख सिर धुन धुन के रोती थी,
जगाजग ज्योति से उनके हृदय में जलन होती थी ।

कि जो जग को जलाने के लिए रावण बुला लाई —
अधमतम क्रूर कर्मा ध्वंस का धावन बुला लाई,
हरी खेती भरी बस्ती में जल-प्लावन बुला लाई,
कि जिसने भव-विभयमय स्वर्ण की लंका बनाई थी,
हजारों घर उजाड़े थे, दिवाली खुद मनाई थी,
चमकते स्वर्ण कलशों में गरीबों की कमाई थी ।

स्वयं यमराज चौखट से बंधे सब जुल्म सहते थे,

विलासी देवगण को जिस तरह रखता था, रहते थे
करोड़ों शव के अम्बारों पै सिंहासन बनाया था,
धरा की नन्दिनी को बन्दिनी जिसने बनाया था

दहल कर दंभ से जिसको सभी दशशीश कहते थे
प्रबल आतंक से दो बाहुओं को बीस कहते थे,
हवाओं की हवा उड़ती समुन्दर थरथराता था,
जिसे लख कर खड़ी खेती को पाला मार जाता था।

धरा को कैद कर आराम से वह रह न सकता था,
मनुज इस क्रूर शोषण को बहुत दिन सह न सकता था,
स्वयं अन्याय ने पीड़ित दलित को ला जुड़ाया था,
प्रवासी राम ने विद्रोह का बीड़ा उठाया था।

नये संघर्ष की यह शक्ति धरती ने जगायी थी,
किसी अवधेश या मिथिलेश की सेना न आयी थी,
सुबह से शाम तक जो राक्षसी अन्याय सहते थे
जिन्हें सब जंगली हैवान बन्दर भालु कहते थे।

उधर थी संगठित सेना अनेकों यंत्र दुर्धर थे,
इधर हुंकारते हाथों में केवल पेड़-पत्थर थे,
मगर था एक ही आदर्श जीने का जिलाने का,
विगत जर्जर व्यवस्था को स्वयं मिटकर मिटाने का।

युगों की साधना सी राम ने जब शक्ति छोड़ी थी,
किसी जर्जर व्यवस्था की विकट चट्टान तोड़ी थी,
कटे सिर-सा पड़ा रावण धरा पर छटपटाता था।
विगत युग मर्सिया गाता, नया युग गान गाता था।

अयोध्या में नये युग को
बुलाने की बेहाली थी,
कि जिसके साज स्वागत में
सजी पहली दिवाली थी।

आज तुम दुहरा रहे हो प्रथा केवल,
आज घर घर में नहीं है स्नेह सम्बल;

आज जन जन में नहीं है ज्योति का बल,
दीप बुझते जा रहे हैं विवश ढुल ढुल,

शेष खंडहर में विगत युग की निशानी,
सुन रहे हो स्वप्न में जैसे कहानी,
बन गई हो जिस तरह अपनी बिरानी।

किन्तु जन जागृति धधकती जा रही है,
जल उठेगी फिर नई बाती सुहानी!
जल रहे हैं दीप जलती है जवानी!

—'विश्वास बढ़ता ही गया' से

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित मुहावरों का अपने वाक्यों में इस प्रकार प्रयोग कीजिए कि उनका अर्थ स्पष्ट हो जाय :

   दाल न गलना, सिर धुन कर रोना, हवा उड़ना, पाला मार जाना, बीड़ा उठाना।

2. "चमकते स्वर्ण-कलशों में गरीबों की कमाई थी"
   इस पंक्ति में निहित विचार को स्पष्ट कीजिए।

3. "कारवाँ यायावरों का बस रहा था, जम रहा था।" इस कथन के प्रकाश में बताइये कि रामकालीन कृषि-युग से पूर्व भारत में कौनसा युग चल रहा था?

4. जग को हराने के लिए रावण को बुला लाने का कार्य किन शक्तियों ने किया?

5. प्रस्तुत कविता के आधार पर प्रतिपादित कीजिए कि 'सुमन' जी आशा और आवेश के कवि हैं।

6. "एक काला हाथ ऊषा की ललाई धो गया था।" इस पंक्ति के भाव को स्पष्ट कीजिए।

7. कवि ने किन आधारों पर यह कहा है कि "आज भी जग में अमा की रात काली"?

8. दीपावली के त्यौहार को प्रगतिवादी कवि ने जो नया मोड़ दिया है उससे आप कहाँ तक सहमत हैं? युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।

9. "आज तुम दुहरा रहे हो प्रथा केवल" कवि के ऐसा कहने का आधार क्या है ?

10. धरा की बेटी मनुज की ब्याहता बन आ गई थी—
इस पंक्ति में 'धरा की बेटी' का प्रासंगिक अर्थ क्या है ?
(1) राम की पत्नी सीता (2) जनक की पुत्री जानकी
(3) हल से जोती हुई धरती (4) कृषि की समृद्धि ( )

11. "आज जन-जन में नहीं है ज्योति का बल"
इस पंक्ति में ज्योति शब्द का प्रासंगिक अर्थ क्या है ?
(1) प्रकाश (2) स्वतंत्रता
(3) कर्त्तव्य भावना (4) पुरुषार्थ ( )

स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय'

जन्म 1911 ई.
मृत्यु 1990 ई.

कवि परिचय :

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म बिहार के देवरिया जिले के कसिया ग्राम में हुआ। शिक्षा-दीक्षा होने के बाद ये सेना में भर्ती हो गये और कुछ वर्ष बाद ही सैनिक सेवा से मुक्त हो कर घुमक्कड़ का जीवन व्यतीत करने लगे और क्रमशः साहित्य-रचना में प्रवृत्त हुए। 'शेखर : एक जीवनी' नामक उपन्यास के प्रकाशन के साथ इन्हें बहुत प्रसिद्धि मिली। अज्ञेय का व्यक्तित्व एक चिन्तक का व्यक्तित्व है और यह चिन्तनशीलता उनके समग्र साहित्य पर छाई हुई है।

अज्ञेय के सम्पादकत्व में 1943 ई. में 'तारसप्तक' का प्रकाशन हुआ, जिसका प्रमुख स्वर प्रगतिशील काव्य का था। अज्ञेय सहित सातों कवि तब प्रगतिशील काव्य लिख रहे थे। 1951 ई. में दूसरा सप्तक और 1959 में तीसरा सप्तक प्रकाशित हुआ जिनमें स्थिति भिन्न हो गई। बहुत से प्रगतिशील कवि अज्ञेय के नेतृत्व में यह कहते हुए प्रगतिशील धारा से अलग हो गये कि कविता के

क्षेत्र में राजनीति को प्रवेश नहीं मिलना चाहिए। इन कवियों ने अपने कृतित्व को पहले 'प्रयोगवाद' और फिर 'नयी कविता' कहना प्रारंभ किया। इस प्रकार 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' प्रगतिशील काव्य-धारा के समानान्तर प्रवाहित होने वाली काव्य-प्रवृत्तियां हैं। इनमें कविता की निजता की सुरक्षा का आग्रह है। 'प्रयोगवाद' कुल मिलाकर अपने शिल्पगत प्रयोगों और भावुकता-विरोध के लिए प्रसिद्ध था।

अज्ञेय 'निजता की सुरक्षा' के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्हें व्यक्तिवादी कवि कहा गया है। 'नदी का द्वीप', 'यह द्वीप अकेला' आदि उनकी प्रतिनिधि कविताएँ हैं जो साहित्य की विशिष्टता की सुरक्षा और 'व्यक्ति-स्वातंत्र्य' का प्रतिपादन करती हैं। एकरूपता की अस्वीकृति अज्ञेय की कविताओं की टेक है। उनके बिम्ब भी प्रायः ऐसे होते हैं, जहाँ एकरूपता को चीर कर कोई दूसरी वस्तु अकेली गतिशील होती है।

'अज्ञेय' की प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं, इत्यलम्, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनु रौंदे हुए थे, अरी ओ करुणा प्रभामय, आंगन के पार द्वार, सुनहरे शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ और सागर मुद्रा। 'कितनी नावों में कितनी बार' कृति ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हुई।

'अज्ञेय' ने उपन्यास, कहानियाँ और निबन्ध भी लिखे हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है।

प्रस्तुत कविताए :

पहली कविता 'बावरा अहेरी' कवि की इसी नाम की कृति से ली गई है। कहना चाहिए कि इसी कविता के आधार पर पूरे कविता-संकलन का नामकरण किया गया है। उदित होते हुए सूर्य को कवि ने एक बावले शिकारी के रूप में देखा है जो अपनी किरणों के जाल में संसार की सभी छोटी-बड़ी, अच्छी-बुरी चीजों को फाँस लेता है। सभी चीजें उसकी आखेट हैं। कवि उससे प्रार्थना करता है कि मेरे मन के भीतर कलुष की जो कालिख लगी है उसे भी तू अपने जाल में समेट कर ले जा। मैं तेरा बहुत आभार मानूँगा। कविता मर्म को छू जाती है। दूसरी कविता 'नदी के द्वीप' में कवि ने द्वीपों का मानवीकरण किया है जो अपने मुख से अपनी कथा कहते हैं। वे नदी माता के पुत्र हैं। उनके आत्म-कथ्य को कवि ने अमित रोचकता प्रदान की है। दोनों कविताएँ मुक्त छन्द में हैं, भाषा गद्य के निकट पहुँची हुई है, प्रतीक नितान्त नये हैं और विषय भी अति-साधारण हैं।

बावरा अहेरी

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल लाल कनियाँ

पर जब खींचता है जाल को
बांध लेता है सभी को साथ
छोटी छोटी चिड़ियाँ

मँझोले परेवे
बड़े बड़े पंखी
डैनों वाले, डील वाले
डौल के बेडौल
उड़ते जहाज

कलस-तिसूल वाले मन्दिर-शिखर से ले
तारघर की नाटी मोटी चिपटी, गोल धुस्सों वाली
उपयोग-सुन्दरी की
बेपनाह काया को :

गोधूली की धूल को, मोटरों के धुंए का भी
पार्क के किनारे पुष्पिता कर्णिकार की आलोक-खची
तन्वि रूप-रेखा को

और दूर कचरा जलाने वाली कल की उद्दण्ड चिमनियों को
जो धुंआ यों उगलती हैं मानो उसी मात्र से
अहेरी को हरा देंगी।
बावरे अहेरी रे !

कुछ भी अवध्य नहीं तुझे, सब आखेट है :
एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी कलौंस को
दुबकी ही छोड़कर क्या तू चला जायेगा ?
ले, मैं खोल देता हूं कपाट सारे

मेरे इस खँडहर की शिरा शिरा छेद दे
आलोक की अनी से अपनी,

गढ सारा ढाह कर ढूह भर कर दे :
विफल दिनों की कलौंस पर माँज जा

मेरी आँखें आँज जा
कि तुझे देखूँ
देखूँ और मन में कृतज्ञता उमड़ आये !

—'बावरा अहेरी' से

□ □ □

नदी के द्वीप

(1)

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, अन्तरीप, उभार, सैकत कूल—
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।
माँ है वह। है, इसी से हम बने हैं।

(2)

किन्तु हम हैं द्वीप,
हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा, हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं हैं, क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जायेंगे।
और फिर हम पूर्ण होकर भी कभी क्या धार बन सकते ?
रेत बन कर हम सलिल को तनिक गँदला ही करेंगे।
अनुपयोगी ही बनायेंगे।

(3)

द्वीप हैं हम।
यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।

हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड़ में।
वह बृहद भूखण्ड से हमको मिलाती है।
और वह भूखण्ड
अपना पितर है।

(4)

नदी तुम बहती चलो।
भूखण्ड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है,
माँजती, संस्कार देती चलो,
यदि ऐसा कभी हो
तुम्हारे आह्लाद में या दूसरों के किसी स्वैराचार से—
अतिचार से

तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा, कीर्तिनाशा
घोर काल-प्रवाहिनी बन जाय

तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर
फिर छनेंगे हम। जमेंगे हम। कहीं फिर पैर टेकेंगे।
कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार।
माता, उसे फिर संस्कार देना तुम।

अभ्यास-प्रश्न

1. निम्न शब्दों के तत्सम रूप लिखिए :
   कलौंस, कलस, त्रिसूल, पितर, धुआं।
2. निम्न शब्दों के अर्थ बताइये और उनका वाक्यों में प्रयोग कीजिए :
   विवर, दूह, अन्तरीप, सैकत-कूल, कर्मनाशा, अतिचार।
3. "बावरा अहेरी" कविता में कवि ने 'उपयोग सुन्दरी' किसे कहा है और क्यों ?
4. कवि "बावरा अहेरी" का किस लिए कृतज्ञ होना चाहता है ?
5. "बावरा अहेरी" कविता की उस पंक्ति को ढूँढ कर लिखिए जिसका अर्थ है : "फूलों से लदी, प्रकाश से नहाई कनेर की कृश काया को।"

6. स्रोतस्विनी को द्वीप अपनी माता क्यों मानते हैं ?

7. 'नदी के द्वीप' कविता का सन्देश क्या है ?

8. 'किन्तु हम बहते नहीं हैं, क्योंकि बहना रेत होना' है । उक्ति के आशय को स्पष्ट कीजिए ।

9. 'नदी के द्वीप' कविता में नयी कविता के कौन-कौन से लक्षण पाये जाते हैं ?

10. 'नदी के द्वीप' कविता के अन्तिम छन्द को ध्यान से पढ़िए और बताइये कि क्या कवि ने द्वीपों का भी पुनर्जन्म माना है ?

11. 'ले, मैं खोल देता हूं कपाट सारे'
इस पंक्ति का क्या भाव है ?
(1) मैं सब दरवाजे खोल देता हूं ।
(2) मैं मन का कपट खोल देता हूं ।
(3) मैं हर तरह के पूर्वग्रह से मुक्त हो जाता हूं ।
(4) मैं स्वतन्त्र हो जाता हूं । ( )

12. 'माता उसे फिर संस्कार देना तुम'
इस पंक्ति में माता शब्द किसके लिए प्रयुक्त हुआ है ?
(1) धरती माता (2) भारत माता
(3) नदी की धारा (4) जीवन धारा ( )

कन्हैयालाल सेठिया

जन्म 1919 ई.

कवि परिचय :

कन्हैयालाल सेठिया का जन्म राजस्थान के सुजानगढ़ नगर में एक सुप्रसिद्ध व्यवसायी परिवार में हुआ । आपकी प्रारम्भिक शिक्षा सुजानगढ़ में तथा बाद की बी. कॉम. तक की शिक्षा कलकत्ता में हुई । गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन में

कूद पड़ने के कारण आपका अध्ययन कुछ काल के लिए स्थगित हो गया। आगे चल कर वे स्वतन्त्रता सेनानी भी रहे।

सेठियाजी की गणना हिन्दी ही नहीं, राजस्थानी के भी श्रेष्ठ कवियों में होती है। प्रस्तुत पाठ में उनकी तीन राजस्थानी कविताओं का आकलन हुआ है। कवि की राजस्थानी काव्य-कृतियाँ काल-क्रम से इस प्रकार हैं : गळगचिया, कूंकूं मींझर, लीलटांस, धर कूंचां धर मजलां, मायड़ रो हेलो, सबद, अघोरी काळ, दीठ।

गहन चिन्तन के फलस्वरूप नवनीत रूप में प्राप्त अनुभूति को सेठियाजी थोड़े-से अर्थ-गर्भ शब्दों और गिनी-चुनी पंक्तियों मे इस कौशल से सहेज कर रख जाते हैं कि पाठक बहुत देर तक मुग्ध हुआ रहता है। मनीषी कवि सेठिया की अधिकतर कविताएं अध्यात्म के द्वार पर दस्तक देती हैं। सृष्टि की अनेकता की तह में एकता का जो सूत्र है, उसी की खोज में उनकी कविता निरन्तर लगी रही है। आर्ष कवियों की भांति सेठियाजी भी एक मंत्र-द्रष्टा कवि हैं। उनकी अनेक लघुकाय कविताएं ऋषियों द्वारा रचे गये मंत्रों के उच्च धरातल तक उठ गई हैं।

सेठियाजी शब्दों के अकारण अपव्यय में विश्वास नहीं करते। वे एक एक शब्द को अत्यन्त विवेक के साथ स्वर्ण-मुद्रा की भाँति व्यय करते हैं। अत्यन्त सरल, पर अर्थ-गर्भ शब्द-चयन में वे अप्रतिम हैं। उनकी लघुकाय कविताओं का एक एक शब्द इतना जीवन्त है कि उसमें से प्राण छलके पड़ते है। "अज्ञेय" की धारणा है कि "कविता शब्दों में नहीं है, शब्दों के बीच की नीरवता में है।" सेठियाजी के काव्य में वह नीरवता उभरती है, पर शब्दों के बीच में नहीं, कविता की समाप्ति के बाद। कविता से जितना कुछ संप्रेषित होता है, उससे कहीं अधिक अर्थ उनकी कविता की समाप्ति के बाद उग आने वाले व्यापक अन्तराल में होता है जिसमें पाठक देर तक डूबा रह जाता है और कभी-कभी तो उसका ओर-छोर तक नहीं पाता। सेठियाजी का अधिकांश सृजन अध्यात्म के अमृतत्व से सिंचित होने के कारण कालजयी काव्य की कोटि में आता है।

पाठ परिचय—

श्री सेठियाजी की तीनों कविताएं अत्यन्त प्रेरक एवं मर्मस्पर्शी है। प्रथम कविता में समय का सजीव रूपक प्रस्तुत किया गया है। पृथ्वी रूपी

ऊँटनी पर आकाश रूपी जीन कस कर तथा सूरज और चांद के पागड़ों में पैर दे कर दिन रूपी ढोला और रात रूपी मरवण अविराम गति से भागे चले जा रहे हैं। बेचारी पूर्व और पश्चिम की दिशाएँ तो इन बटोहियों से पानी पी लेने और तनिक विश्राम कर लेने हेतु बहुत अनुरोध करती हैं पर यौवन-मद से छके बटोही भला उनकी सीख पर क्यों कान देने लगे !

दूसरी कविता का शीर्षक है "इजगर की लीक"। कवि ने कहा है कि अजगर की बनाई हुई लीक को मार्ग समझने की भूल मत करो। इस लीक पर चलकर तुम विष ही प्राप्त करोगे। यह घृणा एवं हिंसा का मार्ग है। सच्चे मार्ग पर चल कर ही हम अपेक्षित लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। उतावलापन सदैव संकट पैदा करता है।

तीसरी कविता में अकाल का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह अकाल अघोरी है। यह सारी फसलें नष्ट कर देता है। छोटे-छोटे बच्चों को भीख मांगने के लिए विवश करता है। असंख्य व्यक्ति खेजड़े की छाल खाकर जीवित रहने का यत्न करते हैं। यह अकाल हृदयहीन है। पशु पक्षी भी इसकी चपेट में आ जाते हैं। मृत्यु के घर में अकाल के कारण उत्सव मनाया जाता है। अघोरी अकाल सबको खाकर मस्त रहता है।

सेठियाजी राजस्थानी के एक सिद्ध कवि हैं। इनकी कविताएं सजीव चित्र प्रस्तुत करती हैं। शब्द चित्रों की प्रभावी प्रस्तुति कविता को विशेष प्राणवान बनाती है। मानवीय संवेदना के समावेश के कारण सेठियाजी की रचनाएं सबको भाती हैं।

□ □ □

धरती री सांढ़ पर

धरती री सांढ़ पर
आभै रो जीन मांड
चांद सूरज रै पागड़ां में पग दे'र
पून री टिचकारी देता
दिन रो ढोलो'र रात री मरवण
वे भाण बगता ही जावै—

घर कूंचा घर मजला
घर कूंचा घर मजलां

बापड़ी अगूण'र आंथूण तो
घणा ही हेला मारै—
बटाऊड़ां, चनेक तो बिसांई ल्यो रे,
बैत नै पाणी पाल्यो रे,
पण हठीलै जोबन रा गैला तो
सदा ही सुणी अणसुणी कर'र चालै !

(कूंकूं से)

☐ ☐ ☐

इजगर री लीक !

मारग कोनी
आ है मोटै इजगर री लीक
पाछो बावड़
टाबर है हाल
आंख्यां री ओळख
बैठो है बिल में काळ
अड़ीकै है भख
सुण चेतण री हेलो

उंतावळा बटाऊ
ओ कोनी गेलो !

(लीलटांस से)

☐ ☐ ☐

अघोरी काळ !

फिरै
हांडतो
अघोरी काळ
सुण'र दकाल
भाज छूट्यो मानखो
पड़ग्या साव सूना
गांव'र गुवाड़
बिछड़ग्या मांवां स्यूं

नांतां टाबर
टूटग्या सम्बन्ध 'र सगपण
दिरावै एक एक मुट्ठी
दाणां रै खातर बै
जका बाजता अन्नदाता,
पड़्यो बिखो
खावै खेजड़ां रा छोडा
कळपै आखी जीवा जूण
उड़ग्या पंखेरू
रया अणहेज्या
आळां में इंडा
जाता रया
रूंखां रा मतलबी भायला
हरियल पानड़ा,
पण कठै जावै
बापड़ा च्यारं पगा सांसर ?
पटका लिया बां नैं बैसख्यां
लूंठी भूख
मंडग्यो
नागड़ी मौत रै घरां
मोटो उच्छब ।

('अघोरी काळ' से)

अभ्यास-प्रश्न

1. हिन्दी पर्याय बताइए—

सांढ़, पूंन, बेभाण, घनेक, बिसांई, बैत, इजगर, हेलो, कोनी, गेलो, हूँडतो, मांवां स्यूं, दिरावै, बिखो, जूण, अणहेज्या, लूंठी, उच्छब

2. 'धरती री सांढ़ पर' कविता में किसके प्रति सम्बोधन है ? आरम्भ की छह पंक्तियों के रूपक की व्याख्या करते हुए बताइए ।

3. 'इजगर' की लीक का अन्योक्तिगत अर्थ स्पष्ट कीजिए ।

4. आशय स्पष्ट कीजिए—

(1) बापड़ी अगूंण 'र आंथूण तो

बजा ही हेला मारै

(2) टाबर है हाल ।

(3) चेतण रो हेलो,

(4) काळपै ज़ीवा जूण,

(5) नागड़ी मौत रै घरां, मोटो उच्छव ।

5. "काळ" को "अघोरी" क्यों कहा गया है ?

6. दुष्काल का किस पर क्या-क्या प्रभाव चित्रित किया गया है ?

7. दुष्काल का सबसे अधिक घातक प्रभाव किन पर बताया गया है चित्रण पर क्या मत रखते है ?

8. 'पण हठीलै जोबन रा गैला'
इस पंक्ति में 'गैला' शब्द का प्रासंगिक अर्थ क्या होगा ?
1. पागल 2. मदमस्त 3. रास्ता 4. बेवकूफ

9. "जका बाजता अन्नदाता"
इस पंक्ति में अन्नदाता शब्द किसके लिए प्रयुक्त हुआ है ?
1. मजदूर 2. किसान 3. हाकिम 4. जमींदार

However, both countri
further development of m
relations. And the new tas
risen in the economic sph
quire the use of new appr
multi-faceted Soviet-India
des not only such industri
computer engineering, pov
building, but also new pro
and scientific cooperation
technology, construction o
USSR and India.

The official friendly vis
Secretary of the CPSU C
Gorbachev in November 1
dian relations to a new h
spects for the developmen
rous directions.

"We highly appreciate
the Soviet Union to comp
country's industrialization"
R. Gandhi noted in his spe
sit of M. S. Gorbachev.

The signing of the Agre
Technological Cooperation
ry of the relations between
come an important result of
talks in Delhi in 1986.

The agreement stipulate
Soviet side in implementin
construction of water powe
coal mines at Jaria deposit,
...tion of the Asian largest r

wer energetics, coal
principal spheres of
and Indian organiza-
in May 1985 during
dia R. Gandhi to the
nd deepening of the

fer ample scope for
y beneficial bilateral
hich nowadays have
of both countries re-
es and trends in the
peration. This inclu-
information science,
dustry and machine-
ng forms: production
change of advanced
t installations in the

India of the General
al Committee M. S.
raised the Soviet-In-
t, opened wide pro-
cooperation in nume-

id rendered to us by
he first stage of our
rime Minister of India
n Delhi during the vi-

nt on Economic and
greatest in the histo-
wo countries, has be-
Soviet-Indian summit

e assistance from the
e following projects:
nplex in Teri and four
onstruction and reno-
lurgic works in Boka-
SR, integrated pros-
ons in West Bengal.
e Soviet-Indian coope-
an for economic deve-
0 per cent of growth in
in electric power en-

whole complex of various relationships between th
USSR and India. This would assist in strengthenin
the spirit of trust, mutual understanding and frien
ship between our peoples.

Cooperation between Soviet and Indian researc organizations is being carried out within the frame work of intergovernmental agreements on applie sciences and technology, agriculture, medicine an health care, atomic energy, as well as on the basi of a number of agreements between the depar ments in both countries: in the field of scientific ex change, rocket sounding of the atmosphere an space research. Joint scientific developments ar being conducted in 14 directions of applied and theo retical science. Among them is the use of sola energy, MHD-generator, powder metallurgy, rus protection of metals, building materials, thermonuclea materials, lasers (tunable lasers, laser plasm studies, medical application of lasers, optical fibres etc.), comparative geology of the Himalayas, th Caucasus, the Urals and Central Asia, etc.

For instance, joint activities on MHD energy con version have been carried out since 1978 when specific programme was developed which provide for the construction of an MHD-generator in Indi using low-calorific coals. A large scientific and expe rimental MHD-centre in Tiruchirapalli, a series of la boratory and technological units have been built i India within a comparatively short period. Complete construction and successful start-up in 1985 of th world first demonstration MHD-unit operating on coa gasification products was an important result of th cooperation.

Within the framework of the scientific problem "The use of solar energy" a stand-alone combine solar energy unit is being developed by the Centra Design Bureau for Scientific Instrument Engineerin of the Uzbek SSR Academy of Sciences and th Central Research Institute for Salt and Marine Che mical Compounds, Indian Institute of Science and In dian Technological Institute.

Cooperation in powder metallurgy had been star ted as early as in the '60s and is associated with th names of Soviet scientists V. P. Elyutin, G. V. Samso nov, O. V. Romanov and others.

Mutually beneficial cooperation in hydrometeoro logy has been carried out in such directions as nu